मूल्य 20 रुपये

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 28 जून 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

3
आडवाणी जी, पार्टी को बचाने के लिए संन्यास ले लीजिए

4
राहुल ने मचाई खलबली

5
पंजाब और हरियाणा भी नक्सलियों के निशाने पर

उच्च शिक्षा में ऊंचे स्तर की घपलेबाज़ी

गंगेश मिश्र

देश में उच्च शिक्षा में उच्च स्तर पर घपलेबाज़ी का बड़ा खेल चल रहा है. कॉलेजों-विश्वविद्यालयों के लिए माई-बाप समझी जाने वाली संस्था-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी-ने बड़े पैमाने पर निजी संस्थानों को समकक्ष यानी डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देकर देश में एक समानांतर शिक्षा व्यवस्था खड़ी कर दी है. वह भी केंद्र सरकार और उसके मानव संसाधन विकास मंत्रालय की आंखों के सामने. इस घपलेबाज़ी को अदालत से लेकर संसद की समिति तक पकड़ चुकी है, पर सरकार है कि कार्रवाई के बदले बयानबाज़ी कर रही है.

कितनी अजीब बात है कि जिस देश में शिक्षा और शैक्षिक संस्थानों की सबसे अधिक चर्चा होती है, वहां दुनिया के सबसे अधिक निरक्षर वयस्क रहते हैं. भारत सरकार, राष्ट्रपति, सुप्रीम कोर्ट से लेकर संसद तक चाहे तो इस पर गर्व कर ले, हम तो शर्मसार हैं. भारतीय लोकतंत्र की इन शिखर संस्थाओं की उदासीनता से भी हम चकित हैं कि इन सबका ज़ोर उस उच्च शिक्षा पर अधिक रहता है, जिसे देश की आबादी की केवल नौ फीसदी ही प्राप्त करती है. यह कहते हुए हम सब गर्व करते हैं कि भारत गांवों का देश है, लेकिन क्या यह भी उतना ही गर्व करने लायक है कि ग्रामीण इलाक़ों में उच्च शिक्षा की दर महज़ सात से आठ फीसदी है. इसके विपरीत संपन्न इलाकों में यह 27 फीसदी है. यह तो हुई एक बात. दूसरी बात यह कि मनमोहन सिंह के नेतृत्व में दोबारा सत्ता में आई यूपीए सरकार ने शिक्षा में सुधार के लिए सौ दिनों का जो एजेंडा तय किया है, उसमें भी सबसे अधिक ज़ोर उच्च शिक्षा पर ही है. सौ दिन के इस एजेंडे को उस मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने तैयार किया है, जिस पर देश में शिक्षा व्यवस्था को दुरुस्त करने का ज़िम्मा है. लेकिन उसकी प्राथमिकता में सबसे ऊपर फॉरेन एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन (रेगुलेशन ऑफ इंट्री एंड ऑपरेशन, मेंटनेंस ऑफ क्वालिटी एंड प्रिव्हेंशन ऑफ कॉमर्सलाइज़ेशन) बिल को पारित कराना है. यानी भारत में गुणवत्ता युक्त उच्च शिक्षा सुनिश्चित कराने के लिए विदेशी यूनिवर्सिटी को शैक्षणिक संस्थान खोलने की छूट होगी. इन विदेशी विश्वविद्यालयों को यहां डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा मिलेगा और वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के (यूजीसी) के नियमों के तहत ही संचालित होंगी. उसी तरह, जिस मनमाने ढंग से देश भर में अनगिनत और कुख्यात डीम्ड यूनिवर्सिटीज़ चल रही हैं. यानी इस सरकार की आंख पर जो नज़र का चश्मा चढ़ा है, वह उच्च और तकनीकी शिक्षा से अधिक नहीं देख पाता. तो क्या बेसिक और प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए बड़े क़दम नहीं उठाए जाएंगे? हम बता दें, नहीं. इसलिए कि उससे जेबें नहीं भरतीं. यही कारण है कि 1956-1990 के बीच देश भर में जहां 29 संस्थान ही डीम्ड यूनिवर्सिटी बने थे, वहीं पिछले 18 साल में 93 और बन गए. इतना ही नहीं, केवल पिछले नौ सालों में ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) और मानव संसाधन विकास मंत्रालय की मेहरबानी से 95 संस्थानों को डीम्ड का दर्जा दिया गया, जिनमें से लगभग सभी मेडिकल कॉलेज या विश्वविद्यालय हैं. इनमें से 40 एनडीए के शासनकाल (1999-2004) में बने तो बाक़ी 50 मनमोहन सिंह की पिछली सरकार के दौरान बने. यूजीसी के आंकड़ों के मुताबिक दिसंबर 2008 तक देश भर में कुल डीम्ड यूनिवर्सिटी की संख्या 122 तक पहुंच चुकी थी. ये आंकड़े 1956 से इसलिए शुरू किए गए हैं, क्योंकि यूजीसी इसी साल अस्तित्व में आया था. ज़ाहिर है, सरकारी सर्टिफिकेट से कुकुरमुत्ते की तरह उग रही शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता मिल जाती है और वे शिक्षा के बाज़ार में मनमानी लूट की हकदार बन जाती हैं. यही कारण है कि डीम्ड यूनिवर्सिटी कही जाने वाली इन संस्थाओं में कैपिटेशन फीस के नाम पर छात्रों का जमकर आर्थिक शोषण हो रहा है. शिक्षा के बाज़ार में यह खुला सौदा है कि एक से दस लाख रुपये देकर इंजीनियरिंग कोर्स में दाख़िला मिल जाता है. जबकि एमबीबीएस कोर्स के लिए 20 से 40 लाख रुपये और डेंटल कोर्स के लिए पांच से 12 लाख रुपये देने पर ही इन संस्थाओं में दाख़िला मिलता है. और तो और, आर्ट व साइंस के पाठ्यक्रमों में 30 से 50 हज़ार रुपये तक वसूल लिए जाते हैं. तमिलनाडु के दो मेडिकल कॉलेजों का मामला अभी पकड़ा गया है. इस विवाद के बाद मानव संसाधन मंत्रालय ने डीम्ड यूनिवर्सिटी के तमाम नए प्रस्तावों पर रोक लगा दी है. साथ ही कैपिटेशन फीस को लेकर फंसे श्री रामचंद्र यूनिवर्सिटी और श्री बालाजी मेडिकल कॉलेज के ख़िलाफ़ जांच भी बैठा दी है. इस मामले में सूचना व प्रसारण राज्य मंत्री एस. जगतरक्षकन पर भी आरोप लगे हैं. कहा गया है कि श्री बालाजी मेडिकल कॉलेज जिस भारत विश्वविद्यालय के तहत चल रहा है, मंत्री महोदय उसके कुलपति हैं. यह दूसरी बात है कि जग-तरक्षकन ने इससे इंकार किया है. बहरहाल, यह तो जांच से ही साफ हो सकेगा कि सच क्या है. उधर, सुप्रीम कोर्ट से कैपिटेशन फीस पर रोक के बावजूद इस तरह की फीस वसूलने वाली श्री रामचंद्र यूनिवर्सिटी के प्रबंधन बोर्ड में मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया (एमसीआई) के अध्यक्ष केतन देसाई और उपाध्यक्ष पीसीके नायर भी हैं. ग़ौरतलब है कि इस यूनिवर्सिटी पर एमबीबीएस कोर्स में दाख़िले के लिए प्रति छात्र 40 लाख रुपये तक लेने का आरोप है. एमसीआई वह संस्थान है, जो मेडिकल कॉलेजों और विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण रखती है. बहरहाल, निजी संस्थानों को जिस तेज़ी से डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा दिया गया, वह बताता है कि इसके लिए आवश्यक जांच-पड़ताल भी नहीं की गई. यानी ग़ैरक़ानूनी ढंग से बने. और जिसका वजूद ही ग़ैरक़ानूनी होगा, वहां नियमों के पालन का सवाल ही नहीं उठता. नियमों की सबसे अधिक धज्जियां दाख़िले और फीस में उड़ाई जा रही हैं. इन संस्थानों में ग़रीब छात्रों को दाख़िला नहीं मिलता. जबकि सरकार से जब इन्हें सस्ती दरों पर ज़मीन दी जाती है, तब ग़रीब छात्रों से जुड़ी शर्तें भी रहती हैं और उन्हें मानने का वादा भी किया जाता है.

लेकिन जिस देश में सरकार बनाने वाले ही वादे नहीं निभाते हों, वहां विशुद्ध दुकानदारी कर रही उच्च शिक्षण संस्थानों से उम्मीद करनी ही बेकार है. हद तो यह कि इन डीम्ड यूनिवर्सिटियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए रेगुलेटरी बॉडीज़ तो हैं, पर वे दिखावे के ही ज़्यादा हैं. डीम्ड यूनिवर्सिटी का तात्पर्य एक ऐसे शैक्षिक संस्थान से होता है, जो लगभग यूनिवर्सिटी के समान होता है. इसलिए हिंदी में इसे सम विश्वविद्यालय भी कह दिया जाता है. इस तरह के संस्थानों को शिक्षकों की नियुक्ति से लेकर डिग्री, पाठ्यक्रम, पढ़ाने का तरीक़ा और फीस सब तय करने का अधिकार होता है. लेकिन यह दर्जा किस तरह के संस्थानों को दिया जाए, इसका आधार यूजीसी के सामने साफ नहीं है. पहले ऐसे कॉलेजों या संस्थाओं को डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा मिल जाता था, जो किसी क्षेत्र विशेष में अत्यंत विशेषज्ञतापूर्ण कार्य कर रही हों या शिक्षण के क्षेत्र में जिनकी साख हो. इस तरह के संस्थानों में नेशनल म्यूज़ियम और दिल्ली स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर उल्लेखनीय हैं. लेकिन पिछले कुछ सालों से यह बड़े घोटाले का एक सरल सा ज़रिया बन गया है. अचरज की बात यह कि तमिलनाडु में तीन मेडिकल कॉलेजों को डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा जब दिया गया, उससे काफी पहले ही वहां दाख़िले शुरू हो चुके थे. इसी तरह राज्य में तीन ऐसे भी कॉलेज भी हैं, जिन्हें डीम्ड का दर्जा मिलने से पहले ही उनका पहला बैच पास हो कर निकल चुका था. इस तरह के एक-एक उदाहरण गुजरात, हरियाणा और पांडिचेरी में भी हैं. यह घोटाला बताता है कि इन संस्थाओं को डीम्ड यूनिवर्सिटी बनाने से पहले उनके यहां की पढ़ाई और अन्य सुविधाओं की जांच ही नहीं की गई. ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि इन संस्थाओं को राजनीतिक रूप से मज़बूत और समाज के असरदार लोग चला रहे हैं. इसीलिए इस तरह का मेडिकल या इंजीनियरिंग कॉलेज कोई सामान्य आदमी नहीं खोलता. ऐसी अधिकतर संस्थाएं आम तौर पर राजनीतिक रसूख रखने वालों की हैं जो उन्होंने छद्म नाम से खोल रखी हैं. इससे उन्हें सीधे-सीधे दो लाभ मिलते हैं. एक तो अपने इलाक़े में उनकी छवि एक ऐसे आदमी की बन जाती है जो शिक्षा के लिए काम करता है. दूसरे, भारी-भरकम कैपिटेशन फीस के ज़रिए हर साल करोड़ों रुपये की कमाई हो जाती है. केंद्रीय सूचना व प्रसारण राज्य मंत्री एस. जगतरक्षकन तक इसी तरह के एक यूनिवर्सिटी से जुड़े होने के कारण विवादित हो चुके हैं.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

सच का हमेशा गला घोंटा गया

यूजीसी तो डीम्ड यूनिवर्सिटी का सर्टिफिकेट इस तरह बांट रही है, जैसे किसी को ड्राइविंग लाइसेंस देने के बाद कहा जाए-जाओ ड्राइविंग सीख लेना.

यह टिप्पणी है यूजीसी के पूर्व सचिव राजू शर्मा की. इसी साफगोई के कारण पिछले साल उन्हें यूजीसी से हटा दिया गया. सिर्फ़ दो-तीन महीने में ही. जबकि उनकी नियुक्ति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली कैबिनेट की नियुक्ति समिति ने की थी. उत्तर प्रदेश कैडर के 1982 बैच के आईएएस अधिकारी राजू शर्मा यूजीसी जाने से पहले पीएमओ में थे और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह उनसे बेहद प्रभावित थे. यूजीसी अध्यक्ष सुखदेव थोराट ने दो-तीन महीने बाद ही अप्रैल 2008 में उन्हें मनमाने ढंग से सिर्फ़ इसलिए हटा दिया कि वह आयोग के कामकाज पर उंगली उठा रहे थे. फ़ैसलों में पारदर्शिता नहीं बरते जाने के कारण फाइलों पर प्रतिकूल टिप्पणियां लिख रहे थे. दरअसल तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह के क़रीबी कहे जाने वाले यूजीसी अध्यक्ष श्री थोराट ने उस पूरे मामले को अपनी जासूसी के तौर पर लिया. उन्हें लगा कि पीएमओ उनके ख़िलाफ़ शिकायतों के आधार पर उनकी जासूसी कराना चाहता है. इसलिए यह कहते हुए राजू शर्मा को हटा दिया गया कि उनको डेढ़ साल बाद अपने मूल कैडर में लौटना है, जबकि यूजीसी सचिव का कार्यकाल पांच साल का होता है. राजू शर्मा की विदाई के बाद ही वर्तमान सचिव आरएस चौहान साहब आए. राजू शर्मा ने यूजीसी के अतिमहत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट-ई गवर्नेंस-की ख़ामियों को उजागर किया था. वह पहले व्यक्ति थे, जिसने नैनो जैसे आधुनिकतम तकनीक की पढ़ाई के नाम पर डीम्ड यूनिवर्सिटी के सर्टिफिकेट देने में बड़े पैमाने पर हो रही घपलेबाज़ी को उजागर की थी. उनके छोटे से कार्यकाल में ही आलम यह था कि वह जिस किसी प्राइवेट संस्थान को डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने वाली फाइल पर प्रतिकूल टिप्पणियां लिखते थे, उसे यूजीसी अध्यक्ष थोराट बग़ैर कोई सलाह-मशविरा किए पलट देते थे. वैसे थोराट गुट का कहना कुछ और है. इस गुट के मुताबिक हितों में टकराव के कारण ही राजू शर्मा को जाना पड़ा. उन्हें हटाने के फ़ैसले के पीछे वजह दरअसल उनकी पत्नी थीं. उनकी पत्नी संगीता लूथरा शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफेंस कॉलेज में पढ़ाती हैं. आरोप है कि जब सेंट स्टीफेंस कॉलेज के प्रिंसिपल विल्सन थंपू के ख़िलाफ़ आंदोलन चल रहा था तब श्रीमती शर्मा उसमें बढ़-चढ़कर भाग ले रही थीं. थंपू मामले में अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थान आयोग जब सुनवाई कर रहा था, तब उसने यूजीसी से पूछा था कि क्या बिना पीएच. डी. किए कोई व्यक्ति कॉलेज का प्रिंसिपल हो सकता है. आरोप है कि राजू शर्मा ने इसकी फाइल यूजीसी अध्यक्ष सुखदेव थोराट को दिखाए बग़ैर अपनी ओर से राय भेज दी-नहीं. हालांकि शर्मा के क़रीबी लोगों का कहना है कि आयोग को इस संबंध में भेजे गए पत्र पर श्री थोराट का दस्तख़त है, जो बताता है कि यह फ़ैसला उनका ही था.

सुखदेव थोराट

यूजीसी को जल्द ही मिल सकता है नया अध्यक्ष

ख़बर गर्म है कि यूजीसी अध्यक्ष सुखदेव थोराट की विदाई होने ही वाली है. नए मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल द्वारा यूजीसी की सार्वजनिक आलोचना से ख़ुद थोराट भी आहत बताए जा रहे हैं. इसलिए ऐसी चर्चा भी है कि श्री थोराट ख़ुद भी पद छोड़ सकते हैं. सूत्रों के मुताबिक थोराट की जगह डॉ. वेद प्रकाश को यूजीसी का नया अध्यक्ष बनाया जा सकता है. डॉ. वेद प्रकाश इस समय यूजीसी के उपाध्यक्ष हैं. उन्हें हाल ही में यूजीसी लाया गया है. इससे पहले वह राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (एनयूपीए) में कुलपति थे. शिक्षा जगत में उनकी अलग पहचान और सम्मान है. वह बतौर सचिव पहले भी यूजीसी में रह चुके हैं. वह कर्मचारी चयन आयोग में संयुक्त सचिव से लेकर योजना आयोग के शिक्षा सलाहकार और एनसीईआरटी में प्रोफेसर और प्रमुख तक के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर रह चुके हैं.

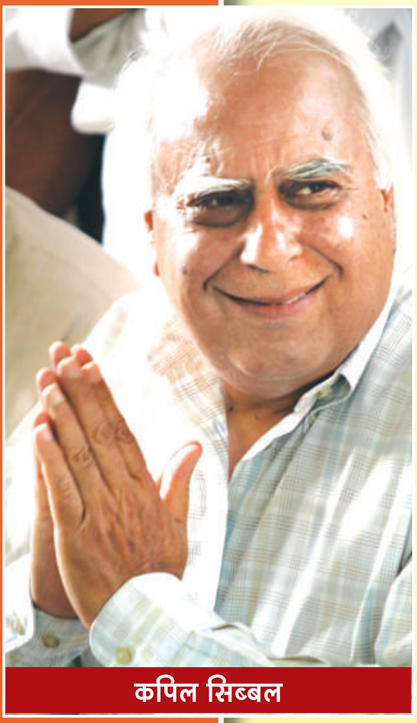

कपिल सिब्बल

फोटो-प्रभात पाण्डेय

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

लौटा विश्वास

वित्त सचिव के तौर पर कार्यभार संभालने के महज़ एक सप्ताह के अंदर ही अशोक चावला ने विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड (एफआईपीबी) के महत्व को फिर से स्थापित किया है. यह बोर्ड उन प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रस्तावों को मंज़ूरी देता है जो विदेशी निवेश के आम तरीक़े में नहीं आते. एफआईपीबी को अब वित्त मंत्रालय की आधारभूत संरचना की देखरेख करने वाली शाखा में लाया गया है.

विदेशी निवेशकों और विदेशी सहयोग वाली भारतीय कंपनियों को न केवल शुरुआत में बल्कि बाद में भी किसी प्रकार के बदलाव के लिए एफआईपीबी की अनुमति लेनी पड़ती है, इसलिए यह बोर्ड काफी समय से महत्वपूर्ण आर्थिक मंत्रालयों के बीच डोलता रहा है. एक समय यह क़ानून, न्याय और कंपनी मामलों के मंत्रालय के अंतर्गत था लेकिन एनडीए सरकार ने इस मंत्रालय को विभाजित कर इसे वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के अधीन कर दिया. जब जसवंत सिंह ने वित्त और कंपनी मामलों का कार्यभार संभाला था तो एफआईपीबी

उनके अधीन आ गया. मई 2004 में यूपीए की सरकार आई, जिसने कंपनी मामलों को एक नया मंत्रालय बना दिया. हालांकि बोर्ड वित्त मंत्रालय के तहत ही रहा.

अब यह निवेश और आधारभूत संरचना की शाखा में लाया जाएगा, तो इसके बाद संयुक्त सचिव गोविंद मेनन की देखरेख में निवेश के मामलों में एकरूपता देखने को मिल सकती है.

आया फेरबदल का मौसम

मायावती को यह लग सकता है कि बाबुओं को बर्ख़ास्त करने से कहीं ज़्यादा मुश्किल उनकी फिर से बहाली करना है. अपनी चुनावी हार से पहले से ही परेशान मायावती के लिए 500 कांस्टेबलों को दोबारा बहाल करने का सर्वोच्च न्यायालय का आदेश एक और झटके की तरह है. अभी बहनजी अपनी हार के लिए बसपा नेताओं और बाबुओं को ही ज़िम्मेदार मान रही हैं.

सिर्फ़ जिला पुलिस प्रमुखों को बदलने से उनका मन नहीं भरा है, तो अब उन्होंने आईएएस अधिकारियों के भी तबादले के आदेश दे दिए हैं, ख़ासकर उन 12 जिलों में जहां बसपा को कांग्रेस ने हराया था. जिन का तबादला हुआ है उनमें जिलाधिकारी नीतीश कुमार (फ़िरोज़ाबाद), सी. एस. बख्शी (कौशांबी), संतोष कुमार (मथुरा) और आर. के. सिंह (सुल्तानपुर) शामिल हैं. इसी बीच गृह सचिव जावेद अहमद को प्रतिनियुक्ति पर केंद्र भेजा जा रहा है. सूत्रों का कहना है कि प्रमुख सचिव (गृह) मंजीत सिंह की हालत भी कमज़ोर ही

है. हालांकि बिहार में भी ऐसे ही बदलाव देखने को मिले हैं लेकिन कारण बिल्कुल उलट हैं. अपनी जीत से उत्साहित नीतीश ने मुख्यालय में नियुक्त अधिकारियों को दूरदराज के लिए रवाना कर दिया है. शायद नीतीश समझ गए हैं कि जीत का रास्ता गांवों और मुफ्फसिलों से होकर गुजरता है.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

नए बाबू, पुराने बाबू

एस के पटनायक अब विदेश मंत्री के पीएस का कार्यभार संभालेंगे. वह फ़िलहाल कृषि मंत्रालय में संयुक्त सचिव के पद पर कार्यरत हैं. पटनायक कर्नाटक काडर के 1982 बैच के आईएएस अधिकारी हैं. उधर सुशील कुमार शिंदे के एक बार फिर ऊर्जा मंत्री बन जाने से मनोज सौनिक शिंदे, जो महाराष्ट्र काडर के 1987 बैच के आईएएस अधिकारी हैं, ऊर्जा मंत्री के पीएस के रूप में कार्य करना जारी रखेंगे.

एफसीआई के नए जीएम

सूत्रों से प्राप्त जानकारी के अनुसार पुष्पेंद्र राजपूत, जो हिमाचल प्रदेश काडर के 1999 बैच के आईएएस अधिकारी हैं, एफसीआई, उत्तर प्रदेश क्षेत्र के नए महाप्रबंधक होंगे. इस पद के लिए उनके साथ ही दो और नाम नामांकित थे. जिनमें से एक आर पी भारद्वाज, जो हरियाणा काडर के 1992 बैच के आईएएस अधिकारी हैं, दूसरे विवेक सक्सेना हैं, जो हरियाणा काडर के 1991 बैच के आईएफएस अधिकारी हैं.

सुधा पिल्लई को मिल सकता है नया कार्यभार

श्रम सचिव सुधा पिल्लई 1972 बैच के अफसरों में सबसे सीनियर हैं और इससे भी महत्वपूर्ण पद के इंतज़ार में हैं. सूत्रों के अनुसार जल्द ही कोई अच्छा पद उन्हें मिल सकता है. 1972 बैच के तीन आईएएस अधिकारियों विनोद राय, डी. सुब्बा राव और जीके पिल्लई को कंप्ट्रोलर एंड ऑडिटर जनरल, आरबीआई का गर्वनर और गृह सचिव के पद पर नियुक्त किया जा चुका है. इसलिए अब इनकी बारी है.

उच्च शिक्षा में ऊंचे स्तर की घपलेबाज़ी

पृष्ठ एक का शेष

इसके लिए पहली बार सीधे-सीधे मानव संसाधन मंत्रालय और यूजीसी की भूमिका पर उंगली उठी ही नहीं, बल्कि तन भी गई है. मज़ेदार बात यह कि इसके लिए दोनों एक-दूसरे पर उंगली उठा रहे हैं. नए मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने कमान संभालते ही यूजीसी के कामकाज की समीक्षा शुरू कर दी है. यूपीए की पिछली सरकार में अर्जुन सिंह के मानव संसाधन विकास मंत्री रहते बड़े पैमाने पर डीम्ड विश्वविद्यालयों को मंजूरी देने और दो सौ करोड़ रुपये के ई-गवर्नेंस प्रोजेक्ट को लेकर आयोग फंस चुका है. दो सौ करोड़ रुपये के ई-गवर्नेंस प्रोजेक्ट की जांच में केंद्रीय सतर्कता आयोग भी यूजीसी को ग़लत करार दे चुका है. यूजीसी ने इस प्रोजेक्ट को मंत्रालय के दो बड़े अफसरों की असहमति के बावजूद हरी झंडी दी थी. लेकिन डीम्ड यूनिवर्सिटी की मान्यता वाले खेल में यूजीसी के अधिकारी सीधे-सीधे मानव संसाधन विकास मंत्रालय को ज़िम्मेदार ठहराते हैं. यूजीसी के सचिव आरके चौहान कहते हैं कि इस मामले में यूजीसी की भूमिका सिर्फ़ सलाहकार की होती है और डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने का अधिकार मंत्रालय को ही है. इसके लिए रिव्यू कमेटी को आड़ बना कर पूरा गड़बड़झाला किया जाता है. यानी अगर किसी संस्थान की समीक्षा रिपोर्ट ठीक नहीं आती है, तो उसकी पुनर्समीक्षा करा दी जाती है. इसके लिए रिव्यू कमेटी भेजने का फ़ैसला पूर्ण आयोग की बैठक में लिया जाता है, जिसकी बैठक में उच्च शिक्षा सचिव से लेकर मंत्रालय के बड़े-बड़े अधिकारी तक शामिल रहते हैं. इसलिए कई बार तो यूजीसी की सलाहों को दरकिनार कर रिव्यू कमेटी की सिफ़ारिशों पर संस्थानों को डीम्ड यूनिवर्सिटी के सर्टिफिकेट दे दिए गए. जैसे तमिलनाडु के पेरियार यूनिवर्सिटी को ही लें. उसकी समीक्षा के लिए यूजीसी की पहली समिति ने 2007 में दौरा किया और उसने कई ख़ामियां पाईं, जिससे उसका मामला फंसने लगा. ऐसे में उसी साल जुलाई में यूजीसी ने दूसरी समिति भेज दी और उसने सब ठीक बता दिया. इसके बाद अगस्त 2007 में उसे डीम्ड विश्वविद्यालय घोषित कर दिया गया.

ऐसा ही एक मामला मेरठ का है. डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने के लिए आई अर्जी पर यूजीसी ने जनवरी 2006 में एक समिति वहां भेजी. उस समिति ने आम तौर पर काफी कुछ ठीक पाया, लेकिन कुछ क्षेत्रों में कमियां भी दिखा दीं. वे कमियां क्या थीं, यह तो नहीं बताया गया लेकिन उसी साल अप्रैल में यूजीसी की रिव्यू कमेटी ने वहां का दौरा किया और उसने उसे हरी झंडी दे दी. इसी तरह अहमदाबाद के सुमनदीप मेडिकल कॉलेज का भी उदाहरण है. अगस्त 2006 में उसे डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने लायक नहीं पाया गया था, लेकिन छह महीने के भीतर ही यानी जनवरी 2007 में उसे हरी झंडी दे दी गई. कहना न होगा कि सरकारी कामकाज में इतनी तेज़ी कर्तव्यपरायणता और ईमानदारी से अधिक दूसरे और अनैतिक कारणों से ही आती है. आम आदमी निगम स्तर पर एक फ़ाइल को आगे बढ़ाने के लिए जिस तरह दस-बीस रुपये देकर काम निकाल लेता है, वही फार्मूला उच्च स्तर पर भी लागू होता है. लेकिन यहां रक़म काफी अधिक होती है.

इससे ठीक उलट एक उदाहरण नोएडा स्थित एमिटी विश्वविद्यालय का है. एमिटी की स्थापना उत्तर प्रदेश सरकार की अनुमति से हुई. इसके लिए राज्य सरकार ने एमिटी विश्वविद्यालय अधिनियम तक बना रखा है. लेकिन यूजीसी उसकी डिग्री को यह कहकर मान्यता देने से वर्षों इंकार करती रही कि प्राइवेट यूनिवर्सिटी खोलने के लिए उससे अनुमति नहीं ली गई. यूजीसी इसी कारण अपनी वेबसाइट पर एमिटी का नाम शुरू में नहीं डालती थी. लेकिन नवंबर 2007 में दिल्ली हाई कोर्ट ने साफ कह दिया कि यूनिवर्सिटी स्थापित करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की मान्यता ज़रूरी नहीं है. न्यायमूर्ति मुकुल मुदगल और न्यायमूर्ति रीवा खेत्रपाल की खंडपीठ ने एक जज वाली बेंच के फ़ैसले को सही करार देते हुए यूजीसी को निर्देश दिया कि वह एमिटी यूनिवर्सिटी को मान्यता प्रदान करे. इस बेंच ने यूजीसी की वह याचिका भी ख़ारिज़ कर दी, जिसमें उसने जुलाई 2007 में एकल न्यायाधीश वाली पीठ के फ़ैसले को चुनौती दी थी. दो न्यायाधीशों वाली पीठ ने कहा कि बेशक़ यूजीसी के पास स्तर बनाए रखने के लिए नियम बनाने की शक्ति है, लेकिन संविधान में यह साफ है कि यूनिवर्सिटी गठित करने का अधिकार राज्य विधायिका का है और इसके लिए यूजीसी की मंजूरी ज़रूरी नहीं है. अदालत ने यूजीसी को एमिटी की डिग्रियों को मान्यता देने का भी निर्देश दिया. हाई कोर्ट के इस फ़ैसले के बाद यूजीसी ने अपनी वेबसाइट पर एमिटी यूनिवर्सिटी का नाम डीम्ड यूनिवर्सिटी वाली सूची में डाल तो दिया है, लेकिन इस सूचना के साथ कि मामला अभी सुप्रीम कोर्ट में लंबित है. यानी हाई कोर्ट के इस फ़ैसले को उसने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी हुई है. वहां भी उसने यही कहा है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने एक क़ानून बनाकर यूनिवर्सिटी की स्थापना की है और इसके लिए उसने उसकी पूर्व मंजूरी नहीं ली है. यहां यह ध्यान दिला दें कि यूजीसी के सचिव श्री चौहान ने हाल के विवादों पर यूजीसी का पक्ष रखते हुए कहा है कि आयोग का काम सिर्फ़ सिफ़ारिश करना है.

इसमें कोई दो राय नहीं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग देश के सभी विश्वविद्यालयों के कामकाज की निगरानी करने, उनके वित्तीय पोषण और अकादमिक विकास के लिए उत्तरदायी संस्था है. इसलिए राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रशासनिक चूक के कारण इसके स्तर में गिरावट उसकी अविश्वसनीयता को ही बढ़ाएगा. इसी के मद्देनज़र पिछले दिनों राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शैली और प्रासंगिकता पर तीखे सवाल उठाए थे. और तो और, उच्च शिक्षा पर बनी यशपाल कमिटी ने भी उसके कामकाज के तरीक़े पर गंभीर सवाल उठाए हैं. यह समिति पिछले साल फरवरी में बनी थी और इसने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में इस साल पहली मार्च को सरकार को सौंप दी है. इस रिपोर्ट पर यक़ीन करें (न करने का कोई कारण नहीं है) तो पिछले 40 सालों से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कोई बड़ा सुधार नहीं किया गया है. यूजीसी के पूर्व चेयरमैन प्रो. यशपाल के नेतृत्व में बनी इस समिति ने निजी और डीम्ड यूनिवर्सिटी को लेकर भी काफी और गंभीर सवाल उठाए हैं.

प्रो. यशपाल की दो टूक राय है कि पिछले कुछ सालों से जिस तरह से प्राइवेट संस्थाओं को डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा दिया जा रहा है, उस पर रोक लगनी चाहिए. जो यूनिवर्सिटी नियमों का पालन नहीं करते, उनसे तीन साल बाद डीम्ड का दर्जा ज़रूर वापस ले लिया जाए.

यूजीसी, टेक्नीकल कोर्सेस की मान्यता देने वाली अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (एआईसीटीई), और मेडिकल कोर्सों को मान्यता देने वाली एमसीआई जैसी संस्थानों के रहते भारत में उच्च शिक्षा की क्या स्थिति है, यह संसद की प्राक्कलन समिति की 17वीं रिपोर्ट से भी स्पष्ट हो जाती है. संसदीय समिति का कहना था कि, समिति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वित्त पोषित विश्वविद्यालयों में अनुसंधान की गुणवत्ता और मात्रा के अपर्याप्त स्तर को देखकर चिंतित है. इतना ही नहीं, देश में लगभग 400 विश्वविद्यालय और समकक्ष (डीम्ड) विश्वविद्यालय होने के बावजूद यहां हर साल मात्र पांच हज़ार छात्र ही पीएचडी करते हैं, जबकि अमेरिका में प्रतिवर्ष 25 हज़ार तो चीन में 35 हज़ार छात्र पीएचडी करते हैं. पीएचडी के मामले में ही नहीं, बल्कि शोधपत्रों और पेटेंट के मामले में भी हम अन्य देशों की तुलना में काफी पीछे हैं. वर्ष 2005 में भारत के पास 648 पेटेंट थे, जबकि चीन के पास 2,452, अमेरिका के पास 4,511 और जापान के पास 25,145 पेटेंट थे. अनुसंधान पत्रों के प्रकाशन में विश्व में भारत का हिस्सा मात्र 2.5 प्रतिशत है, जबकि विश्व अनुसंधान पत्रों के प्रकाशन में अमेरिका 32 फीसदी की भागीदारी निभाता है.

ऐसा नहीं है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यह कोई लाइलाज रोग है. इसका इलाज तो है, लेकिन इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति अवश्य नहीं है. यह कितनी शर्मनाक बात है कि जिस यूजीसी के चेयरमैन कभी ख़ुद डॉ. मनमोहन सिंह रह चुके हों, उनकी ही पिछली सरकार में डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने में सबसे बड़ा घोटाला हो गया. ग़ौरतलब है कि 1991 में नरसिंह राव सरकार में वित्त मंत्री बनने से पहले वह यूजीसी के चेयरमैन ही थे, लेकिन उनका यह कार्यकाल थोड़े दिनों के लिए ही रहा था. मनमोहन सिंह 15 मार्च 1991 से 20 जून 1991 तक यूजीसी में रहे.

बहरहाल, यशपाल समिति ने घोटालों और तमाम गड़बड़झालों पर रोक लगाने के मक़सद से यूजीसी, एआईसीटीई और एमसीआई आदि को ख़त्म कर एक उच्च शिक्षा आयोग बनाने की सिफ़ारिश की है. केंद्र से लेकर राज्य स्तर के सभी विश्वविद्यालय इस आयोग के अधीन ही होंगे और यह बिना कोई भेदभाव किए सबसे लिए समान नीति बनाएगा. फंड के बंटवारे में भी वह कोई भेदभाव नहीं करेगा. यही आयोग डीम्ड यूनिवर्सिटी का दर्जा देने का काम भी देखेगा. समिति ने इस आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए एक उच्चाधिकार समिति बनाने की भी सिफ़ारिश की है. उस समिति में प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को बतौर सदस्य रखने की बात कही गई है.

लेकिन लोगों की आम राय यही है कि इन सिफ़ारिशों पर अमल करना आसान नहीं होगा. इसलिए कि अगर ये संस्थाएं बंद हो गईं, तो फिर अपने लोगों को खपाने का बड़ा ज़रिया ही ख़त्म हो जाएगा. दूसरे, जिस देश में स्कूल-कॉलेज ही राजनीति के अखाड़े बन गए हों, वहां से राजनीतिक दल और उसके नेता अपना गर्भनाल कैसे और क्यों काट लेंगे ?

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 15, 28 जून 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

आडवाणी जी, पार्टी को बचाने के लिए संन्यास ले लीजिए

मनीष कुमार

भाजपा में नेताओं की लड़ाई और गुटबाजी सचमुच गहरा गई है. यशवंत सिन्हा, जसवंत सिंह और अरुण शौरी ने ऐसा राग छेड़ दिया है कि आडवाणी गुट की हवा ही निकल गई है. विरोध करने वाले नेताओं की बातों में तर्क है, जिसका जवाब आडवाणी और पार्टी अध्यक्ष राजनाथ सिंह के पास नहीं है. चुनाव के दौरान हुई ग़लतियों पर सवाल खड़े करने वाले नेता उन बातों को सामने लाए हैं जिससे आज भाजपा का हर कार्यकर्ता बावस्ता है. यही वजह है कि यशवंत सिन्हा के इस्तीफे का जवाब अरुण जेटली ने अपने इस्तीफे से दिया है. शह और मात के खेल में अरुण जेटली ने राजनीति की एक शानदार चाल चली है. इस खेल में नुकसान सिर्फ़ भाजपा का होने वाला है. भाजपा के कई नेता मानते हैं कि अंदरूनी कलह के केंद्र में आडवाणी हैं. उनको आगे रख कर भाजपा के कुछ नेता अपना खेल कर रहे हैं. उनका मानना है अगर इस नाज़ुक वक़्त में आडवाणी जी संन्यास ले लें तो पार्टी इन झगड़ों को निपटा कर मज़बूत बन सकेगी.

भाजपा में आज हर नेता अपने प्रतिद्वंद्वियों पर निशाना साध रहा है. चुनाव में हार-जीत होती रहती है, यह कोई नई बात नहीं है. हार को पचाना एक बड़ी बात है. हालांकि भाजपा जिस तरह चुनाव लड़ी, जिस तरह बड़े-बड़े नेताओं को दरकिनार किया गया, जिस तरह बंद और एयरकंडीशंड कमरों में चुनाव से जुड़े फ़ैसले लिए गए, जिस तरह ज़मीनी कार्यकर्ताओं का अपमान हुआ, जिस तरह पुराने नेताओं की अवमानना हुई, जिन नेताओं और सलाहकारों की वजह से भाजपा हारी और उनको पुरस्कृत किया गया, तो विरोध के स्वर तो उठने ही थे. भाजपा के साथ मुश्किल यह है कि पार्टी के पास ज़मीनी नेता ही नहीं बचा. आइए, अब पहले एक नज़र डालते हैं कि चुनाव के बाद ऐसा क्या हुआ जिससे भाजपा नेताओं को सार्वजनिक तौर पर पार्टी के ख़िलाफ़ बोलना पड़ा. चुनाव परिणाम आने के अगले ही दिन से आरोप-प्रत्यारोपों का दौर शुरू हो गया. सबसे पहले, पार्टी के रणनीतिकार और आडवाणी की सलाहकारों की टोली के प्रमुख अरुण जेटली और सुधींद्र कुलकर्णी सामने आए. इन लोगों ने मीडिया का इस्तेमाल पार्टी की हार का विश्लेषण करने में किया. अपने बयानों और लेखों में ख़ुद की ज़िम्मेदारी को दरकिनार कर वे हार का दोष दूसरों पर मढ़ने लगे. आडवाणी के प्रमुख सलाहकार और चुनाव रणनीतिकार कुलकर्णी ने एक अंग्रेजी अख़बार में लिख दिया कि इस चुनाव में आडवाणी एक विजेता का तेवर नहीं दिखा सके. अगर आडवाणी ने चुनाव से पहले कुछ कठोर फ़ैसले ले लिए होते तो शायद भारतीय जनता पार्टी की स्थिति ऐसी नहीं होती. इसके बाद एक दूसरे अख़बार में सुधींद्र कुलकर्णी ने फिर एक लेख में भाजपा की विचारधारा और उसके आरएसएस के साथ रिश्ते पर सवाल खड़े कर दिए. तब पार्टी के प्रवक्ता का जवाब आया कि कुलकर्णी की राय उचित नहीं है, क्योंकि वह ख़ुद भाजपा के चुनावी रणनीतिकारों में से एक थे. वाजिब है, इनकी बातें भाजपा के दूसरे गुट के नेताओं को बुरी लगीं. यह भी कितनी अजीब बात है कि जिन लोगों के नेतृत्व में चुनाव की योजना बनी, जिन लोगों ने चुनाव की रणनीति बनाई और जो लोग हार के लिए ज़िम्मेदार थे, वे ही मीडिया में अपने लेखों और वक्तव्यों के ज़रिए ख़ुद को साफ-सुथरा बता कर हार का ठीकरा दूसरे के माथे फोड़ रहे थे. मामला सिर्फ़ हार की ज़िम्मेदारी का नहीं है. हार के बाद जब लोकसभा और राज्यसभा में विपक्ष के नेताओं की बात उठी, तब आडवाणी एंड कंपनी के सौजन्य से उन लोगों को कुर्सी दी गई जो हार के लिए ज़िम्मेदार थे. भाजपा के नेता इस बात से नाराज़ हैं कि अरुण जेटली को राज्य सभा में नेता विपक्ष क्यों बनाया गया. सुषमा स्वराज को उपनेता क्यों बनाया गया.

इसके बाद बहुत ही हास्यास्पद तरीक़े से भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह मैदान में कूदे. उन्होंने विरोध के स्वर को रोकने के लिए प्रेस कांफ्रेंस में फरमान जारी कर दिया कि कोई भी नेता पार्टी के मामले को लेकर मीडिया में बयानबाज़ी न करे. राजनाथ सिंह ने पार्टी नेताओं और कार्यकर्ताओं को हिदायत दी कि भविष्य में वह किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं करेंगे. उन्होंने पार्टी नेताओं से कहा कि पार्टी की अंदरूनी गतिविधियों के बारे में ऐसा कोई विचार प्रकट न करें, जिससे पार्टी की छवि पर नकारात्मक प्रभाव पड़े. अजीब बात है. इससे पार्टी के अंदर की गंभीर स्थिति का पता चल गया कि पार्टी में अनुशासन लाने के लिए अध्यक्ष को भी मीडिया का सहारा लेना पड़ा. उनके प्रेस कांफ्रेंस से भाजपा का गृहयुद्ध जग ज़ाहिर हो गया. इस प्रेस कांफ्रेंस के दौरान राजनाथ सिंह ने ख़ुद को हंसी का पात्र बना लिया. जिस वक़्त वह भाजपा नेताओं के लिए मीडिया से बातचीत न करने फरमान का जारी कर रहे थे, उसी समय एक नेशनल चैनल यशवंत सिन्हा की चिट्ठी के बारे में बता रहा था. ख़बरिया चैनलों पर ब्रेकिंग न्यूज़ चल रहा था-यशवंत सिन्हा का इस्तीफा. राजनाथ सिंह के बयान ख़त्म होते ही जब रिपोर्टरों ने उनसे यशवंत सिन्हा के इस्तीफे के बारे में पूछा तो वह झेंप गए और कह दिया कि उन्हें इसके बारे में जानकारी नहीं है. अब ऐसी पार्टी के बारे में क्या कहा जाए, जिसके एक वरिष्ठ पदाधिकारी के इस्तीफे के बारे में पूरा देश जान चुका हो, लेकिन उसके अध्यक्ष को उसकी भनक तक नहीं थी. राजनाथ सिंह ने अगर चुनाव के दौरान अनुशासनहीनता पर उस वक़्त बयान दिया होता, जब अरुण जेटली ने सुधांशु मित्तल का मामला उठा कर राजनाथ के ही ख़िलाफ़ मीडिया में अनौपचारिक बयानबाज़ी की थी और जब जेटली चुनाव के बीच मीडिया को बता रहे थे कि उन्होंने केंद्रीय समित की बैठकों का बायकाट कर दिया है तो आज यह नौबत नहीं आती. एक के किए को दूसरे ने दोहरा दिया. जसवंत सिंह ने चुनाव में पार्टी की हार के बाद चिट्ठी लिखी, जिसकी ख़बर मीडिया को दी गई. अरुण शौरी की नाराज़गी भी मीडिया में चर्चा बनी. यशवंत सिन्हा की चिट्ठी ने तो अंदरूनी कलह को सबके सामने लाकर खड़ा कर दिया. वैसे भी पार्टी में अंदरूनी राजनीति में विरोधियों को सबक़ सिखाने के लिए मीडिया का इस्तेमाल करने में भाजपा के ज़्यादातर नेता माहिर हैं. उमा भारती भी इसी वजह से पार्टी छोड़कर अपनी अलग पार्टी बना चुकी हैं. उसकी वजह भी मीडिया में अनौपचारिक बयानबाज़ी ही थी. यह बात भी सही है कि चाहे पार्टी के वरिष्ठ नेता जसवंत सिंह हों या यशवंत सिन्हा, आत्ममंथन की दुहाई देकर उन्होंने कहीं न कहीं भारतीय जनता पार्टी में उत्तराधिकार की लड़ाई को बढ़ाया ही है. अरुण जेटली के इस्तीफे ने इस लड़ाई को और भी हवा दे दी है. अगर आत्ममंथन की चिंता इन लोगों को होती, तो भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक से पहले ही पार्टी में आंधी नहीं उठती. लड़ाई इसलिए हो रही है कि लालकृष्ण आडवाणी के बाद कौन पार्टी का नेतृत्व करे, कौन आगे आए, किसका कितना महत्व हो, कौन संसद के अंदर विपक्ष का नेतृत्व करे और कौन संगठन के अंदर पार्टी का नेतृत्व करे. कुछ समय पहले तक कांग्रेस की हार की वजह उसका कमज़ोर संगठन हुआ करता था और भाजपा की जीत की वजह इसका मज़बूत संगठन और समर्पित कार्यकर्ता हुआ करते थे. आज मामला ठीक इसके उलट है. पार्टी को समझना पड़ेगा कि जब से एनडीए की सरकार बनी, तब से भाजपा में ऐसे लोगों का वर्चस्व बढ़ा जिन्हें संगठन से कुछ लेना-देना नहीं है. इन पत्रकारों, लेखकों और वकीलों की घुसपैठ पार्टी में विचारक के तौर पर हुई. भाजपा के शीर्ष नेताओं को लगा था कि पहली बार पढ़े-लिखे लोग पार्टी में शामिल हो रहे हैं. लेकिन यहां ग़लती यह हो गई कि विचारकों से सलाह लेकर ख़ुद फ़ैसले लेने के बजाय उन्हें ही फ़ैसले लेने की ज़िम्मेदारी दे दी. इन विचारकों ने भाजपा की कार्यप्रणाली को ही बदल कर रख दिया. भाजपा फ़र्ज़ी कॉरपोरेट कल्चर के चक्कर में फंस गई है. जो लोग राजनीतिक दलों को कॉरपोरेट की तरह चलाना चाहते हैं वह जनता के नेता नहीं हो सकते हैं. कार्यकर्ताओं को हल्के में लेने का ही नतीजा है कि पार्टी दोबारा चुनाव हार गई. आसमान से टपके विचारक अगर पार्टी के मुख्य रणनीतिकार बनेंगे और जनता के बीच काम करने वाले नेताओं को दरकिनार किया जाएगा तो इससे पार्टी का हमेशा नुकसान ही होगा. पार्टी संगठन मज़बूत नहीं होगी. भाजपा के बड़े-बड़े नेताओं को राहुल गांधी से सबक़ लेना चाहिए कि संगठन को कैसे मज़बूत किया जाता है. कांग्रेस में भी विचारकों का हुजूम है, लेकिन उनका एक निश्चित स्थान है. वे फ़ैसले नहीं लेते सिर्फ़ सुझाव देते हैं. कांग्रेस में फ़ैसला लेने का हक़ कुछ शीर्ष नेताओं तक ही सीमित है. लेकिन भारतीय जनता पार्टी ने इन विचारकों को ही अपने सिर बिठा लिया. विचारकों की इस टोली ने एक ख़तरनाक खेल के तहत आडवाणी को मज़बूत नेता बता कर उन्हें झांसे में डाल दिया और उनके पीछे सारे फ़ैसले लेते रहे.

इन लोगों ने पहले जनता के बीच साख रखने वाले नेताओं को पार्टी के अंदर दरकिनार किया. आडवाणी ख़ामोश रहे. इसके बाद कार्यकर्ताओं से पार्टी की दूरी बढ़ा दी. आडवाणी जी कुछ नहीं बोले. शायद प्रधानमंत्री बनने के सपने ने उन्हें सच्चाई देखने से महरूम कर दिया. चुनाव के नतीजे से यह साफ हो गया है कि भारतीय जनता पार्टी के लिए यही विचारक किस्म के नेता भस्मासुर साबित हुए हैं. चुनाव के नतीजे ने आडवाणी जी को कमज़ोर नेता तो साबित किया ही, अब पार्टी के नेता उन्हें कमज़ोर साबित कर रहे हैं. पार्टी में विरोध की आवाज़ बुलंद करने वाले नेताओं ने आडवाणी के नेतृत्व को ठुकरा दिया है. उन्हें अब आडवाणी पर भरोसा नहीं है कि वह पार्टी को मज़बूत कर सकेंगे. वे कह रहे हैं कि आडवाणी जी के कमज़ोर नेतृत्व की वजह से ही पार्टी कमज़ोर हुई है. भारतीय राजनीति में आडवाणी जी का एक मुक़ाम है. आडवाणी बनना कोई आसान काम नहीं है. लेकिन अब ऐसा लग रहा है कि जीवन के इस पड़ाव में उनकी चमक ख़त्म हो रही है. आडवाणी जी को सोचना पड़ेगा कि जिस तरह उनके सलाहकारों ने इस चुनाव में अटल बिहारी वाजपेयी के पोस्टर और फोटो नहीं लगने दिए, कहीं उसी तरह अगले चुनाव में आडवाणी जी का हाल न हो जाए. पार्टी में उन्हें याद करने वाला कोई बचे ही न. भाजपा में आज भी दीनदयाल उपाध्याय और श्यामा प्रसाद मुखर्जी को याद किया जाता है. अगर आडवाणी जी चाहते हैं कि भविष्य में भाजपा उन्हें याद करे तो ज़रूरी है कि वह राजनीति से संन्यास ले लें. भारतीय जनता पार्टी का जो हाल है उसके बारे में तो यही कहा जा सकता है कि यहां नेताओं की बड़ी महत्वाकांक्षाएं, बढ़ती खेमेबाज़ी, पैसे का मोह और अंतहीन अनुशासनहीनता का बोलबाला हो चुका है. इस मुश्किल समय में आडवाणी जी को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए कि वह ख़ुद एक पक्ष बन जाएं. बल्कि उन्हें एक सर्वमान्य नेता के रूप में अपनी साख बनाने की कोशिश करनी चाहिए. भारतीय जनता पार्टी को अब उनके नेतृत्व की नहीं, मार्गदर्शन की ज़रूरत है.

यह समय पार्टी की ग़लतियों को छुपाने का नहीं है, सच्चाई का सामना करने का है. पार्टी ने पिछले दस सालों में कौन-कौन से ग़लत क़दम उठाए, उन पर विचार होना ही चाहिए. उन वजहों को समझने की ज़रूरत है कि भाजपा के कार्यकर्ता क्यों नाराज़ हैं? क्यों भाजपा के समर्थक मत देने अपने घरों से नहीं निकल रहे हैं? अब भाजपा में आमूलचूल बदलाव का समय आ गया है. ज़मीनी नेताओं और ख़ासकर युवाओं को-जिनकी छवि अच्छी हो और जो निजी महत्वाकांक्षाओं से ऊपर उठकर पार्टी के प्रति ईमानदार हों-आगे लाने की ज़रूरत है. ऐसा तभी हो पाएगा जब भाजपा के वरिष्ठतम नेता राजनीति से संन्यास लेकर मार्गदर्शक की भूमिका में आ जाएं. भारतीय जनता पार्टी को अगर बचाना है तो आडवाणी जी को चाहिए कि पार्टी को नए, ऊर्जावान और ईमानदार लोगों के हाथों में सौंप कर संन्यास ले लें.

> भाजपा में आज हर नेता अपने प्रतिद्वंद्वियों पर निशाना साध रहा है. चुनाव में हार-जीत होती रहती है, यह कोई नई बात नहीं है. हार को पचाना एक बड़ी बात है. हालांकि भाजपा जिस तरह चुनाव लड़ी, जिस तरह बड़े-बड़े नेताओं को दरकिनार किया गया, जिस तरह बंद और एयरकंडीशंड कमरों में चुनाव से जुड़े फ़ैसले लिए गए, जिस तरह ज़मीनी कार्यकर्ताओं का अपमान हुआ, जिस तरह पुराने नेताओं की अवमानना हुई, जिन नेताओं और सलाहकारों की वजह से भाजपा हारी और उनको पुरस्कृत किया गया, तो विरोध के स्वर तो उठने ही थे. भाजपा के साथ मुश्किल यह है कि पार्टी के पास ज़मीनी नेता ही नहीं बचा.

manish .chauthiduniya@gmail.com

टूट भी सकती है पार्टी!

कभी सबसे अनुशासित और सबसे अलग पार्टी होने का दंभ भरने वाली भारतीय जनता पार्टी की परेशानी भी अलग है. पार्टी का अनुशासन हार की आंधी में ग़ायब हो गया है. विचारधारा को लेकर असमंजस की स्थिति है. संगठन गर्त में जाता दिख रहा है. नेताओं की आपसी फूट के उजागर होने से कार्यकर्ताओं में घोर निराशा है. कार्यकर्ताओं और नेताओं के बीच का संपर्क ख़त्म हो गया है. भारतीय जनता पार्टी फिलहाल युवा नेताओं के लिए रेगिस्तान साबित हो रही है. भविष्य की भाजपा का चेहरा धूमिल हो रहा है. पार्टी आज ऐसे भंवर में इसलिए फंसी है, क्योंकि वह हार को पचाने में सक्षम नहीं है. जो लोग हार की वजहों पर बहस करना चाहते हैं उन्हें पार्टी में अनुशासन का डंडा दिखाया जा रहा है. संकेत तो यह भी मिल रहा है कि अगर राष्ट्रीय कार्यकारिणी में कुछ कठोर फ़ैसले नहीं लिए गए तो पार्टी उपाध्यक्ष यशवंत सिन्हा की तरह कई और नेताओं के इस्तीफों की झड़ी लग सकती है. अरुण जेटली का इस्तीफा इसी श्रृंखला की एक कड़ी लग रहा है. मज़े की बात तो यह कि इस्तीफा भी उन्होंने भारत की ज़मीन से नहीं दिया. फिलहाल वह विदेश यात्रा पर हैं. पार्टी की अंदरूनी बैठकों से भी वह ख़ुद को बचा रहे हैं. अब भाजपा के मीडिया प्रचारक यह राग अलाप रहे हैं कि जेटली का इस्तीफा तो चार दिन पहले आ गया था, पर मीडिया के सामने तो वह अभी ही आया. हैरानी की बात तो यह भी है कि चुनावी हार की वजहों पर विचार करने से पार्टी कतरा क्यों रही है. ख़तरा तो इस बात का है कि भाजपा में अगर इस मामले का जल्द से जल्द निपटारा नहीं हुआ तो पार्टी टूट जाएगी. भाजपा को बचाने के लिए पार्टी को अपना चाल, चरित्र और चेहरा बदलना ही होगा.

यह तो सिर्फ़ सेमीफाइनल है!

आजकल भाजपा में चल रही नेताओं की लड़ाई तो सिर्फ़ सेमीफाइनल है. यह लड़ाई और भी गंदा रूप तब ले लेगी, जब आडवाणी के उत्तराधिकारी की घोषणा होगी, जब पार्टी के नए अध्यक्ष का नाम तय होगा. फ़िलहाल नरेंद्र मोदी, शिवराज सिंह चौहान, वसुंधरा राजे सिंधिया और रमन सिंह जैसे कई खिलाड़ी परदे के पीछे हैं. यह तो उत्तराधिकार की लड़ाई है. इस लड़ाई से ही तय होगा कि अगले पांच-दस सालों में भारतीय जनता पार्टी की कमान किसके हाथों में होगी? कहीं यह बग़ावत लालकृष्ण आडवाणी के ख़िलाफ़, उनकी नेतृत्व क्षमता और उनके उस फ़ैसले के ख़िलाफ़ तो नहीं, जिसके तहत वह फिर से नेता प्रतिपक्ष बन बैठे? यह आत्म सम्मान की भी लड़ाई है. आज भाजपा कई धड़ों में बंटी नज़र आ रही है. एक तरफ़ वे हैं जिनके नेतृत्व, नीति और नीयत की वजह से पार्टी चुनाव में हारी. इनमें आडवाणी और उनके सलाहकार-अरुण जेटली, वेंकैया नायडू, अनंत कुमार, सुषमा स्वराज आदि प्रमुख हैं. दूसरी तरफ वे हैं, जिनकी पिछले कुछ सालों से पार्टी के फ़ैसले में हिस्सेदारी नहीं है. इनमें जसवंत सिंह, यशवंत सिन्हा और अरुण शौरी के साथ-साथ कई अन्य नेता हैं. कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन दोनों ही गुटों के बाहर हैं, लेकिन आडवाणी एंड कंपनी से नाराज़ हैं. ये उसी गुट के साथ जाएंगे जो गुट इस गृहयुद्ध को जीतेगा.

बदले बदले से हैं मनमोहन

रूबी अरुण

वे दिन गए जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की छवि कमज़ोर और दब्बू नेता की हुआ करती थी. मनमोहिनी मुस्कान और भींचे होठ ही उनकी पहचान थी. आज मनमोहन का अंदाज़-ए-बयां कुछ बदला हुआ सा है. वह अब खुलकर नीतिगत फ़ैसले लेने लगे हैं. मनमोहन न सिर्फ़ अपनी बल्कि अपने मंत्रिमंडलीय सहयोगियों की ज़िम्मेदारियां भी तय करने लगे हैं. अब प्रधानमंत्री पहले की तरह लिखा हुआ भाषण भी नहीं पढ़ते. उन्हें अपने मन की भाषा बोलनी आ गई है. यही वजह है कि अपनी दूसरी पारी में संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव में भाग लेते समय मनमोहन ने कोई लिखित भाषण नहीं पढ़ा. वही कहा, जो उन्हें वाजिब लगा. विनम्र, मृदुभाषी प्रधानमंत्री के तेवर इन दिनों ज़रा कठोर दिखने लगे हैं. उनके क़रीबी मित्र और सहयोगी उनके इस अंदाज़ से ख़ासे चकित हैं. अमूमन ख़ामोश रहने वाले मनमोहन सिंह अब अपने बेहद ख़ास सहयोगियों से भी सवाल करते दिख रहे हैं.

न सिर्फ़ सवाल बल्कि चेतावनी भी देते हैं. बंद कमरों में लिए गए निर्णय लालफीताशाही की भेंट न चढ़ें, इसकी ख़ातिर जनता और देश से जुड़े सभी फ़ैसलों को सूचना के अधिकार क़ानून के तहत अब आम किया जा रहा है. इससे एक तो लोगबाग इस बात से वाक़िफ हो रहे हैं कि सरकार उनके लिए क्या कर रही है. दूसरे, इसके ज़रिए सरकार अपनी और सहयोगियों की जवाबदेही भी तय कर रही है. प्रधानमंत्री कार्यालय से इस बार कोई आदेश मौखिक नहीं दिया जा रहा . हर निर्देश काग़ज़ पर दिया जाता है, ताकि जवाबदेही से बचने या मुकरने की कोई गुंजाइश ही न रहे. मनमोहन के इस रवैए की वजह उनके सहयोगी समझने की जुगत में हैं. दरअसल यह भारी जनादेश से मिली ज़िम्मेदारी है, जिसे निभाने का प्रयत्न किया जा रहा है. सरकार बनते ही मनमोहन सिंह ने एक पत्र अपने मंत्रिपरिषद के सभी सहयोगियों को भेजा. कैबिनेट सचिवालय ने यह चिट्ठी पब्लिक इनवेस्टमेंट बोर्ड, एक्सपेंडिचर फाइनेंस कमेटी सहित कई अन्य विभागों को भी भेजी. इसमें सभी को यह निर्देश दिया गया था कि सभी विभागों और मंत्रालयों द्वारा लिए फ़ैसलों की सूचना तुरंत प्रधानमंत्री कार्यालय को दी जाए. यानी कि हर मंत्री, हर विभाग जो भी फ़ैसला ले उसकी एक प्रति तुरंत प्रधानमंत्री कार्यालय को भेजी जाए. जबकि पहले होता ऐसा था कि अगर कोई भी फ़ैसला एक से अधिक मंत्रालय या विभाग मिल कर लेते थे तो उनके बीच सामंजस्य करने की गरज से उसकी सूचना प्रधानमंत्री कार्यालय को दी जाती थी. अब प्रधानमंत्री अपने सहयोगियों के हर फ़ैसले से सीधे वाक़िफ़ होना चाहते हैं. मनमोहन यह जानना चाहते हैं कि उनके मंत्री क्या कर रहे हैं और उनके फ़ैसले यूपीए सरकार द्वारा आम जनता से किए गए वादे को पूरा करते भी हैं या नहीं. यही वजह है कि प्रधानमंत्री कार्यालय से जारी एक और दिशा-निर्देश में मंत्रिपरिषद के सभी मंत्रियों से साफ-साफ कहा गया है कि वे जब भी कोई नीतिगत फ़ैसले लें इस बात का ख़याल ज़रूर रखें कि यूपीए ने लोगों से क्या वादे किए हैं. सबसे

प्रधानमंत्री कार्यालय से इस बार कोई आदेश मौखिक नहीं दिया जा रहा. हर निर्देश काग़ज़ पर दिया जाता है ताकि जवाबदेही से बचने या मुकरने की कोई गुंजाइश ही न रहे. मनमोहन के इस रवैए की वजह उनके सहयोगी समझने की जुगत में हैं. दरअसल यह भारी जनादेश से मिली ज़िम्मेदारी है जिसे निभाने का प्रयत्न किया जा रहा है. सरकार बनते ही मनमोहन सिंह ने एक पत्र अपने मंत्रिपरिषद के सभी सहयोगियों को भेजा.

ख़ास बात तो यह कि विपक्ष को भी सरकार के फ़ैसलों की जानकारी देने के निर्देश दिए गए हैं. प्रधानमंत्री कार्यालय से जारी हिदायतों मे मंत्रियों के लिए साफ आदेश है कि वे किसी भी अनावश्यक मुद्दे पर बेवजह बयानबाजी न करें. साथ ही, दूसरे मंत्रालयों के फ़ैसलों के बारे में भी कोई टिप्पणी न करें. यानी सरकार के पिछले कार्यकाल में अर्जुन सिंह और टीआर बालू ने मनमानी और अनर्गल बयानबाज़ी कर जो तूफ़ान पैदा किया था, वैसी हिमाकत करने की अब मंत्री सोचें भी मत. नहीं तो जिस तरह अर्जुन सिंह और टीआर बालू को मंत्रिमंडल से बाहर रख उन्हें उनके बड़बोलेपन की सज़ा दी गई है, वैसी सज़ा के हक़दार दूसरे भी बन सकते हैं. यह वही मनमोहन हैं, जो अपने पिछले कार्यकाल में चाहते हुए भी इन दोनों मंत्रियों के पर नहीं कतर सके थे. इस बार उन्हें मंत्री नहीं बनाने के पीछे प्रधानमंत्री की ही भूमिका है. वहीं अपने प्रियपात्र एसएम कृष्णा को विदेश मंत्री बना कर मनमोहन ने अपने सहयोगियों को अपनी ताक़त का भी अहसास कराया है. वह भी तब, जब यह सवाल उठ रहे हों कि कांग्रेस में कुछ नेता ऐसे हैं जो विदेश मंत्री के तौर पर कृष्णा से ज़्यादा बेहतर साबित हो सकते हैं. सबसे हैरानी तो तब हुई जब पांच जून को वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी से मुलाक़ात के बाद प्रधानमंत्री कार्यालय से एक बयान जारी किया गया.

इसमें जिक्र था कि प्रधानमंत्री ने वित्त मंत्रालय को यह निर्देश दिया है कि अगला केंद्रीय बजट बनाते समय राष्ट्रपति के अभिभाषण में शामिल की गई प्राथमिकताओं और कार्यक्रमों का पूरी तरह ध्यान रखा जाए. पिछले पांच सालों में प्रधानमंत्री कार्यालय से इस अभिप्राय का पत्र कभी जारी नहीं किया गया था. लिहाज़ा सभी का इस पत्र से हैरान होना लाज़िमी था. ख़ासकर प्रणव मुखर्जी जैसे सीनियर और कांग्रेस के तारणहार नेता प्रणव मुखर्जी से मुलाक़ात के बाद. बाद में इस तरह की भी ख़बरें आईं कि प्रणव मुखर्जी इस बात से थोड़े आहत भी हुए थे. पर आदेश मानना तो उनकी बाध्यता है. हालांकि कहा यह भी जा रहा है कि मनमोहन सिंह अपनी मर्ज़ी से ये सब कर ही नहीं सकते, जब तक मैडम यानी सोनिया गांधी का आदेश न हो. वह आज भी मि. यस की ही भूमिका में हैं. वह महज़ आदेश का पालन कर रहे हैं. आज भी वह रबर स्टांप का ही काम कर रहे हैं. हक़ीक़त जो हो, पर जो दिखाई दे रहा है उसका मतलब तो यही है कि मनमोहन अब कमज़ोर नहीं.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

फोटो–प्रभात पाण्डेय

राहुल ने मचाई खलबली

अब राहुल के मिशन यूपी का मुक़ाबला समाजवादी पार्टी अखिलेश यादव के ज़रिए करेगी. युवा बनाम युवा. उधर बसपा सुप्रीमो मायावती की हसरतों की भी हवा निकल चुकी है. कहां तो मायावती को यह मुग़ालता था कि उनकी सोशल इंजीनियरिंग का फ़ार्मूला सुपरहिट होगा और उन्हें सर्वजन समाज का वोट मिल जाएगा.

राहुल गांधी के मिशन यूपी ने उत्तर प्रदेश की सियासत में हलचल मचा दी है. राहुल का समाजवाद, उनकी सोच, कार्यशैली और दलितों-ग़रीबों से घुलने-मिलने के उनके अंदाज़ ने समाजवादी पार्टी और बहुजन समाजवादी पार्टी के नेताओं के बीच खलबली पैदा कर दी है. उन्हें अपने वजूद के मिटने का ख़तरा नज़र आने लगा है. कुछ दिनों पहले तक जो मुलायम सिंह यादव यह कहते नहीं अघाते थे कि अभी तो वह जवान हैं और समाजवादी पार्टी को बख़ूबी चलाने की पूरी कुव्वत रखते हैं, वही मुलायम सिंह फ़िलहाल राहुल की युवा शक्ति के आगे नतमस्तक होकर प्रदेश की कमान अपने बेटे अखिलेश यादव को थमा चुके हैं. अब राहुल के मिशन यूपी का मुक़ाबला समाजवादी पार्टी अखिलेश यादव के ज़रिए करेगी. युवा बनाम युवा.

उधर बसपा सुप्रीमो मायावती की हसरतों की भी हवा निकल चुकी है. कहां तो मायावती को यह मुग़ालता था कि उनकी सोशल इंजीनियरिंग का फ़ार्मूला सुपरहिट होगा और उन्हें सर्वजन समाज का वोट मिल जाएगा, जिसके बूते वह देश की प्रधानमंत्री बन जाएंगी. पर जनता इस कदर करवट बदलेगी, उन्हें अंदाज़ा ही नहीं था. सर्वजन की बात तो दूर रही उनकी अपनी जाति के लोगों ने भी किनाराकशी कर ली. मायावती का सपना धूल में मिल गया. अब मायावती के सामने सबसे बड़ी चुनौती है प्रदेश में अपना अस्तित्व बचाए रखने की. इन दिनों माया यही करने में लगी हैं. जिस राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना के बलबूते कांग्रेस ग़रीबों में अपनी जगह बनाने में कामयाब रही, उस योजना को मायावती ने पहले तो कोई अहमियत ही नहीं दी, पर अब उन्हें इसकी महत्ता समझ में आ चुकी है. मायावती अब इसी योजना के ज़रिए कांग्रेस और राहुल का तोड़ ढूंढ़ रही हैं. हालांकि मुश्किलें यहां भी हैं. कांग्रेस पहले ही इस योजना के सफल होने का सेहरा बांध चुकी है. कांग्रेस की प्रदेश में अप्रत्याशित सफलता से दोनों ही दल सकते में हैं. उन्हें इस बात का ख़तरा है कि 1989 से प्रदेश की सत्ता से बेदखल हुई कांग्रेस फिर से राज्य के सिंहासन पर क़ाबिज़ न हो जाए. सपा यह सोच डरी हुई है कि उत्तर प्रदेश की जिस राजनीति में पिछले 20 वर्षों से सेकुलर पार्टी की जिस स्थिति पर समाजवादी पार्टी जमी हुई है उस पर कांग्रेस फिर से वापस न आ जाए. यक़ीनन यह डर राहुल गांधी के नेतृत्व, उनकी मेहनत और दूरगामी रणनीतियों से पैदा हुआ है. राहुल का ही कमाल था कि लोकसभा चुनाव में सपा को कई सीटों का नुकसान उठाना पड़ा. सपा भले ही अभी भी 23 सीटों के साथ राज्य में नंबर एक पोजीशन पर है, पर उसका वोट प्रतिशत बहुत कम हुआ है. ज़ाहिर है, सपा उत्तर प्रदेश में अगले विधानसभा चुनाव में हर हाल में इस नुकसान की भरपाई करना चाहेगी. लिहाजा वह उन सभी दांव-पेंच का सहारा ले रही है जिसका इस्तेमाल राहुल गांधी करते हैं और जिसके बूते कांग्रेस ने राज्य में लंबे अरसे बाद अपनी गहरी पैठ बनाने में सफलता पाई. अखिल भारतीय महिला कांग्रेस की अध्यक्ष प्रभा ठाकुर कहती हैं कि राहुल गांधी की ऊर्जा, उनके जोश और आम जनों तक उनकी पहुंच ने विरोधी दलों की हालत पतली कर दी है. राहुल ने यह कह कर उनकी चिंता और बढ़ा दी है कि यह उत्तर प्रदेश में अपना पूरा ध्यान संगठन को मज़बूत करने में लगाएंगे. पार्टी भी चाहती है कि युवराज ख़ुद को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के तौर पर सबके सामने पेश करें. इससे पूरे प्रदेश में कांग्रेस की जो लहर उठेगी उसमें सारे विरोधी दल तिनके की तरह बह जाएंगे. अखिलेश यादव के हाथों में समाजवादी पार्टी का कमान आना राहुल के इसी बयार का असर है. पार्टी महासचिव और मीडिया प्रभारी जनार्दन द्विवेदी कहते हैं कि कांग्रेस को छोड़कर अन्य किसी भी दल ने अभी तक देश के युवाओं को इतना महत्व नहीं दिया था. उनमें अपना भरोसा नहीं जताया था. देश के विकास में भागीदारी की अपील नहीं की थी. स्वर्गीय राजीव गांधी ने इसका मूल्य समझा. उन्होंने 18 साल के युवाओं को वोट देने का अधिकार दिलाया और अब उसी परिपाटी का निर्वाह राहुल भी कर रहे हैं. लोकसभा चुनाव में उन्होंने देश की युवाशक्ति का आह्वान किया. नतीजा सबके सामने है. युवाओं ने तस्वीर बदल दी. अब वही युवा उत्तर प्रदेश की तक़दीर भी बदलेगा. आहुल का आग़ाज़, उनका अंदाज़ समाज के आख़िरी आदमी के मन को छूता है. उसे यक़ीन दिलाता है कि कांग्रेस उसके हक़ में सोचती है, करती है. आम आदमी राहुल में ख़ुद को देखने लगा है. भरोसा करने लगा है. ज़ाहिर है, राहुल के इसी करिश्मे से सबक़ लेकर अब विपक्षी भी अपनी-अपनी पार्टियों में नए ख़ून को ज़्यादा अहमियत देने लगे हैं. मुलायम सिंह बेहद अनुभवी राजनीतिज्ञ हैं. वह अपनी पार्टी को इस बात के लिए तैयार कर रहे हैं कि राहुल गांधी का मुक़ाबला कैसे किया जाए. देश में इस वक़्त जो आबादी है, उसमें 35 साल के लोगों की उम्र ज़्यादा है. लिहाजा हर पार्टी युवाओं को अधिक से अधिक मौक़ा देने की होड़ में लग गई है. मायावती की मुश्किल यह है कि फ़िलहाल उनकी पार्टी में ऐसा कोई युवा नेता नहीं है, जिस पर मायावती भरोसा करें या उसे पार्टी की महती ज़िम्मेदारी सौंपे. मतलब यह कि मायावती इस मसले पर फ़िलहाल बैकफुट पर हैं. उन्हें अपने बाक़ी बचे कार्यकाल में अपने कामों से यह साबित करना होगा कि वही उत्तर प्रदेश की जनता की सच्ची हितैषी हैं. उनके मुक़ाबले मुलायम कुछ बेहतर हालत में हैं. लेकिन मुलायम को नेहरू की राजनीतिक वंश परंपरा से लोहा लेना है. राहुल को विरासत में मिली राजनीति को आम अवाम की स्वीकार्यता मिल चुकी है. मुलायम ने अभी-अभी अपने राजनीतिक घराने की बुनियाद डाली है और उसे जन स्वीकृति मिलनी बाक़ी है. हालांकि राहुल और अखिलेश में कई समानताएं भी हैं. दोनों युवा हैं, विनम्र हैं. दोनों ने ही विदेश में पढ़ाई भी की है. फ़र्क़ बस यह है कि अखिलेश गांव में पैदा हुए. खेती, किसानी और ग़रीबी को उन्होंने क़रीब से देखा है. जबकि राहुल अभी यह सब समझने का प्रयत्न कर रहे हैं. यहां पर राहुल गांधी का अखिलेश से मुक़ाबला ज़रूर है. अखिलेश का पलड़ा ऐसे मायने में राहुल से भारी है. अखिलेश को सरकार और विपक्ष दोनों की राजनीति का अनुभव है. राहुल को प्रदेश में अभी विपक्ष की राजनीति करनी है. बावजूद इसके, राहुल फैक्टर सिर चढ़ कर बोल रहा है. यही कारण है कि अब भारतीय जनता पार्टी में भी इस बात का दबाव बढ़ रहा है कि पार्टी का प्रदेश नेतृत्व युवा हाथों में सौंपा जाए. हाल में हुई बीजेपी विधायकों की एक बैठक में वरुण गांधी को नेतृत्व सौंपने की मांग भी उठी थी. लोकदल के अध्यक्ष अजित सिंह भी अपने बेटे जयंत को कमान सौंपने पर गंभीरता से सोच रहे हैं. लब्बोलुआब यह कि राहुल गांधी के बहाने प्रदेश में युवा राजनीति का दौर शुरू हो चुका है. लेकिन राजनीति से विमुख हो चुके युवा वर्ग को किस कदर राहुल ने लुभाया है और कांग्रेस के पाले में ले आए हैं, यह बात ज़रूर विरोधी दलों के गले की फांस बन चुकी है.

फोटो–प्रभात पाण्डेय

रूबी अरुण

ruby.chauthiduniya@gmail.com

पंजाब और हरियाणा भी नक्सलियों के निशाने पर?

संजीव पांडेय

क्या पंजाब और हरियाणा भी अब नक्सलियों के निशाने पर है? यह सवाल हाल ही में हरियाणा में कुछ नक्सलियों की गिरफ़्तारी से पैदा हुआ है. गिरफ़्तार नक्सलियों ने जो खुलासे किए हैं, वे बेहद विस्फोटक हैं. वहीं पंजाब के मानसा जिले में शामलात ज़मीन पर एक वामपंथी संगठन के क़ब्ज़े के प्रयास ने राज्य पुलिस की नींद उड़ा दी है. इसके बाद कई लोगों की गिरफ़्तारी भी हुई है. हाल ही में संपन्न हुए लोकसभा चुनाव में कुछ वामपंथी संगठनों द्वारा दोनों राज्यों के कुछ चुनावी क्षेत्रों में चुनाव बहिष्कार की अपील के बाद मामला गंभीर होता नज़र आ रहा है. हालांकि हरियाणा में हुई गिरफ़्तारी को कुछ संगठन पूरी तरह से ग़लत भी ठहरा रहे हैं. उनका मानना है कि राज्य पुलिस ने जानबूझ कर कुछ नौजवानों को नक्सली बताकर गिरफ़्तार किया है. उधर पंजाब पुलिस इंटेलिजेंस ने चुनावी बहिष्कार से संबंधित पर्चे लगाए जाने की रिपोर्ट पुलिस मुख्यालय को भेजी है. अगर उनकी रिपोर्ट पर ही भरोसा किया जाए तो राज्य में इस समय नक्सली विचारधारा वाले 30 संगठन सक्रिय हैं.

हरियाणा पुलिस ने 20 अप्रैल से पांच जून 2009 के बीच राज्य में अलग-अलग जगहों पर कथित तौर पर 17 नक्सलियों को गिरफ़्तार किया है. इनमें हरियाणा माओवादी संगठन के इंचार्ज डॉ. प्रदीप कुमार भी हैं. पुलिस ने उनके पास से देसी रिवाल्वर, 315 बोर के तीन पिस्टल और एक ग्रेनेड और चार डेटोनेटर की बरामदगी भी दिखाई है. पुलिस का दावा है कि हाल ही में संपन्न हुए लोकसभा चुनावों के दौरान यमुनानगर के छछरौली क्षेत्र में चुनाव बहिष्कार के पोस्टर भी इन लोगों ने ही लगाए थे. उल्लेखनीय है कि गिरफ़्तार कुल 17 लोगों में से आठ को यमुनानगर पुलिस की स्पेशल टीम ने गिरफ़्तार किया है. पुलिस का दावा है कि इनमें से कुछ लोगों ने झारखंड जाकर प्रशिक्षण लिया है. ये सीधे तौर पर सीपीआई-एमएल से जुड़ कर काम कर रहे हैं.

उधर कुछ संगठनों ने हरियाणा में हुई इस गिरफ़्तारी को ग़लत ठहराया है. पीयूडीआर और पीयूसीआर से जुड़े पंजाब एवं हरियाणा हाई-कोर्ट के वकील राजीव गोदारा के अनुसार चार जून को जिन छह लोगों को कुरुक्षेत्र और यमुनानगर से गिरफ़्तार दिखाया गया, वे दरअसल कई दिनों से पुलिस हिरासत में थे. उनकी गिरफ़्तारी पर तीन जून को पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका डाली गई थी और जब पुलिस को नोटिस गया तो उनकी गिरफ़्तारी दिखा दी गई और उनके पास से हथियारों की बरामदगी भी दिखा दी गई. गोदारा के अनुसार पुलिस ने नरवाना में भी जानबूझ कर कई लोगों को टार्चर किया. उन्हें कई दिनों तक थानों में माओवादी होने के शक में बिठाकर रखा गया और बाद में छोड़ दिया गया. उन्होंने कहा कि 22 मई से लेकर पहली जून तक यमुनानगर और जिंद के इलाक़े में उनकी टीम गई और पता चला कि पुलिस राजनीतिक बदले की भावना से कार्रवाई कर रही है. जो लोग ग़रीबों और ज़रूरतमंदों की लड़ाई लड़ रहे है उन्हें पुलिस तंग कर रही है.

उधर पंजाब के मानसा जिले में 2009 के लोकसभा चुनावों के दौरान वामपंथी संगठनों के नेतृत्व में लगभग दो सौ एकड़ शामलात ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया गया. इन ज़मीन पर भूमिहीन मज़दूरों को बैठा दिया गया, जो काफी समय से हाउसिंग की समस्या से जूझ रहे थे. मानसा के खारा बरनाला गांव समेत लगभग 25 गांवों में शामलात ज़मीनों पर इस तरह की कार्रवाई हुई. चुनाव के दौरान पुलिस वालों ने तो चुप्पी साधे रखी, पर 16 मई को चुनाव परिणाम आते ही पुलिस ने कार्रवाई शुरू कर दी. सारे शामलात ज़मीन पर क़ब्ज़े को हटाया और लगभग एक हज़ार लोगों को गिरफ़्तार कर लिया गया. गिरफ़्तार लोगों में सीपीआई-एमएल के नेता स्वपन मुखर्जी शामिल थे. पुलिस का मानना है कि क़ब्ज़े में सीपीआई-एमएल समेत कुछ दूसरे नक्सली संगठनों की भूमिका थी. वे राज्य में नक्सली आंदोलन को तेज़ करने की कोशिश में हैं. उधर सीपीआई-एमएल ने इस पर प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि ज़मीन से पुलिस ने जबरन क़ब्ज़ा हटवाया है. भूमि सुधार के तहत दलित कृषक मज़दूरों का हक़ शामलात ज़मीन के एक तिहाई हिस्से पर है. उन्होंने अपने अधिकारों का दावा ही किया है. लेकिन पुलिस ने सारी ज़मीन ख़ाली करवा कर ग़ैरक़ानूनी काम किया है. वामपंथी संगठनों ने बीते 10 अप्रैल को फिरोजपुर जिले के जलालाबाद क्षेत्र के हबून गांव में कांग्रेस नेता गुरदर्शन सिंह बराड़ के लगभग आठ एकड़ ज़मीन पर लगी फ़सल को काटने से रोक दिया था. इसके बाद पुलिस हरक़त में आई और रात में पुलिस की मौजूदगी में फ़सल की कटाई हुई.

उधर लोकसभा चुनावों से ठीक पहले चुनावी बॉयकाट के पोस्टर लगाए जाने के बाद राज्य में ख़ुफ़िया एजेंसियां सतर्क हो गई हैं. इंटेलिजेंस ने पुलिस मुख्यालय को भेजी अपनी रिपोर्ट में बताया है कि संगरूर और भटिंडा इलाक़े में लोक संग्राम मंच नामक संगठन ने पोल बॉयकाट की अपील की थी और पोस्टर भी लगाए थे. हालांकि पंजाब और हरियाणा में नक्सली गतिविधियों की शुरुआत के पीछे कुछ सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को भी देखना होगा. इन दोनों राज्यों में दलितों और प्रभावी कृषक जातियों के बीच तनावपूर्ण संबंध ठीक वैसे ही हैं, जैसे बिहार में दलितों और अन्य ऊंची जातियों के बीच रहे हैं. पंजाब और हरियाणा में भी ग्रामीण दलित आर्थिक रूप से ऊंची कृषक जातियों पर निर्भर हैं. इनमें मुख्य रूप से जाट हैं. ग्रामीण इलाक़ों में यहां भी बिहार की तरह ही दलित महिलाओं से बलात्कार की घटनाएं घटती रहती हैं. आरोप है कि इन मामलों में सामान्य रूप से ऊंची जातियों के लोग अधिक शामिल पाए जाते हैं. पंजाब में जाट सिखों और दलितों के बीच ग्रामीण इलाक़े में टकराव के कुछ मामले सामने आए हैं. यही टकराव राज्य में नक्सली संगठनों को पांव जमाने में मदद कर रहे हैं.

सात जनवरी 2006 को मानसा जिले के झब्बर गांव में एक दलित बंत सिंह पर गांव के कुछ जाटों ने हमला किया. बंत सिंह गंभीर रूप से घायल हो गया और बाद में पीजीआई चंडीगढ़ में उसके दोनों हाथ काटने पड़े. बंत सिंह सीपीआई-एमएल का कार्यकर्ता था और इलाक़े में वामपंथी आंदोलन को मज़बूत कर रहा था. साथ ही उसने प्रभावशाली जाटों के खेत में काम करने से मना कर दिया था. पर बंत सिंह की इस सक्रियता के पीछे भी अलग कहानी थी. बंत सिंह के साथ गांव के दबंगों की यह पहली ज़्यादती नहीं थी. इससे पहले 2002 में उसकी बेटी बलजीत कौर के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया था. 2004 में इस मामले में तीन लोगों को सज़ा भी हुई. इनमें एक आरोपी जाट था. इस दौरान गांव के दबंगों ने उस पर सामूहिक बलात्कार के मामले में पीछे हटने के लिए दबाव बनाया. पर बंत सिंह नहीं माना, जिसके कारण उस पर जानलेवा हमला कर दिया गया. पर लड़ाई सिर्फ़ आर्थिक मोर्चे पर ही नहीं है. लड़ाई सामाजिक मोर्चे पर भी है. पंजाब जैसे राज्य में विकास के सारे सुख और बड़े सुधार आंदोलन देख लेने के बाद भी दलितों को वह स्थान नहीं मिला है, जो एक सभ्य समाज में मिलना चाहिए. इसका सीधा फ़ायदा नक्सली सगंठन राज्य में उठा सकते हैं. राज्य में डेरों के बढ़ते प्रभाव का एक कारण यह भी है. गुरु गोविंद सिंह के संदेश-मानुष की जात सबै एको पहुचानबे-के बावजूद गुरुद्वारों में दलितों के साथ भेदभाव आज भी जारी हैं. पंजाब के मालवा इलाक़े में जाट सिखों के भेदभाव के कारण दलित सिखों ने अपने अलग गुरुद्वारे बना लिए हैं. जबकि भेदभाव से परेशान हो भारी संख्या में दलित सिख डेरों के प्रभाव में आ गए है. इनमें डेरा सच्चा सौदा, डेरा सच खंड बल्ला उदाहरण हैं. हाल ही में वियाना में डेरा सच खंड बल्ला के गुरु की हत्या के बाद पंजाब में भड़की हिंसा इसी का उदाहरण है. कहीं न कहीं इन टकरावों के बीच सामाजिक भेदभाव शामिल हैं. इस सामाजिक भेदभाव की सच्चाई को सिख बुद्धिजीवी स्वीकार करते हैं. वियना की घटना के बाद नौ जून को जालंधर में सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें सिख विद्वानों के अलावा दलित प्रतिनिधि भी शामिल हुए. इस सम्मेलन में जत्थेदार गुरबचन सिंह ने दलितों और जाटों के सामूहिक श्मशान घाट की वकालत की. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष अवतार सिंह मक्कड़ का मानना है कि दलितों के साथ भेदभाव सिख परंपरा के ख़िलाफ़ है. उल्लेखनीय है कि पंजाब 1970 के दशक में भी नक्सली आंदोलन का गवाह बना. यहां के बड़े जमींदार नक्सली आंदोलन के निशाने पर आए. उस दौरान पूरे राज्य में हुई हिंसा में लगभग 80 लागे मारे गए थे. नक्सलियों के निशाने पर उस समय जो प्रमुख लोग आए थे, उनमें मालवा इलाक़े के कई बड़े कांग्रेसी और अकाली दल के नेता थे. ये नेता सिर्फ़ राजनीतिक रूप से ही सक्रिय नहीं थे, बल्कि उनके पास भारी ज़मीन थी. उस समय नक़्सलियों के टारगेट में वर्तमान मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल भी थे. इनके अलावा काफी ज़मीन के मालिक माने जाने वाले कांग्रेसी नेता जगमीत बराड़, पूर्व मुख्यमंत्री हरचरण सिंह बराड़, गुरदर्शन सिंह बराड़ आदि भी उनके निशाने पर रहे हैं

फोटो-पीटीआई

हरियाणा पुलिस ने 20 अप्रैल से पांच जून 2009 के बीच राज्य में अलग-अलग जगहों पर कथित तौर पर 17 नक्सलियों को गिरफ़्तार किया है. इनमें हरियाणा माओवादी संगठन के इंचार्ज डॉ. प्रदीप कुमार भी हैं. पुलिस ने उनके पास से देसी रिवाल्वर, 315 बोर के तीन पिस्टल और एक ग्रेनेड और चार डेटोनेटर की बरामदगी भी दिखाई है.

सीपीआई (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) सक्रिय

पंजाब और हरियाणा में नक्सली सक्रियता का खुलासा मई 2008 में हुआ. 10 मई 2008 को धनबाद में सीपीआई-माओवादी की सेंट्रल कमेटी के सदस्य प्रमोद मिश्रा की गिरफ़्तारी के बाद झारखंड पुलिस ने दावा किया कि माओवादी अब पंजाब और हरियाणा में प्रभाव बढ़ाने के प्रयास में लगे हुए हैं. झारखंड के डीजीपी वीडी राम ने इस संबंध में पंजाब पुलिस को सूचना भी दी. प्रमोद मिश्रा से झारखंड पुलिस को मिली जानकारी के अनुसार पंजाब और हरियाणा में अब सीपीआई-माओवादी के काडर तैयार किए जा रहे हैं. पंजाब में सपोर्ट बेस तैयार करने के लिए जहां भूमिहीन मज़दूरों को मोबलाइज़ करने की योजना बनाई गई है, वहीं सीमांत किसानों को भी अपने पाले में लेने की योजना तैयार की गई है. प्रमोद मिश्रा ने गिरफ़्तारी से पहले पंजाब और हरियाणा का दौरा भी किया था. मिश्रा ने पुलिस से पूछताछ के दौरान बताया कि नक्सली संगठनों ने पंजाब के शहरों में रहने वाले बिहार, झारखंड के मज़दूरों को भी अपने पाले में लेने की योजना बनाई है. लुधियाना जैसे औद्योगिक नगर में काफी बड़ी संख्या में बिहार के मज़दूर हैं. वे यहां पर झुग्गियों में रहते हैं. उनके निवास को शेल्टर के तौर पर उपयोग किया जा सकता है. उल्लेखनीय है कि प्रमोद मिश्रा बिहार के औरंगाबाद जिले के रफीगंज ब्लाक का रहने वाला है. शुरुआत में नक्सलियों के निचले काडर से अपना काम शुरू कर प्रमोद मिश्रा सीपीआई-एमएल की सेंट्रल कमेटी तक में स्थान बनाने में कामयाब हुआ. इस साल मार्च में ही फिल्लौर के पास से एक और गिरफ़्तारी हुई. पुलिस ने दावा किया कि वह सीपीआई-माओवादी का झारखंड एरिया का जोनल कमेटी हेड जयप्रकाश है. पुलिस के दावे के अनुसार जयप्रकाश झारखंड में कई नक्सली हमलों में वांटेड था. जयप्रकाश पिछले कुछ समय से जालंधर, फिल्लौर और लुधियाना के इलाक़े का अध्ययन कर रहा था और यहां पर नक्सली बेस को बढ़ाने में लगा हुआ था.

इंटेलिजेंस के मुताबिक तीस नक्सली संगठन सक्रिय

इंटेलिजेंस रिपोर्ट के मुताबिक इस समय पंजाब में लगभग 30 नक्सली संगठन सक्रिय हैं. ये संगठन सीपीआई-माओवादी, सीपीआई-एमएल (पार्टी यूनिटी) सीपीआई-एमएल (न्यू डेमोक्रेसी) और सीपीआई-एमएल (लिबरेशन) से संबंधित हैं. ये संगठन राज्य के फ़िरोज़पुर, संगरूर, भटिंडा, पटियाला, मोगा, लुधियाना, मानसा आदि इलाक़े में सक्रिय हैं. कुछ संगठनों ने नवांशहर, अमृतसर, जालंधर के इलाक़े में भी अपने पांव जमाने शुरू कर दिए हैं. जबकि सीपीआई-एमएल से संबंधित पंजाब राज्य समिति पश्चिमी हरियाणा के कुछ इलाक़ों में भी अपना काम कर रही है. इनके ऑपरेशन एरिया में पंजाब के भटिंडा, मोगा, मानसा, मुक्तसर, फरीदकोट, फ़िरोजपुर समेत पश्चिमी हरियाणा के सिरसा, हिसार, फतेहाबाद और राजस्थान के गंगानगर जिले भी शामिल हैं. जबकि पंजाब की राज्य समिति जालंधर, कपूरथला, होशियारपुर, गुरदासपुर, अमृतसर, तरनतारन के अलावा जम्मू-कश्मीर में भी सक्रिय है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

यूपी में मंत्री से बड़ा होता है नौकरशाह !

अजय कुमार

मंत्री तो आते-जाते रहते हैं, लेकिन नौकरशाह हमेशा अपने पदों पर विराजमान रहते हैं. नौकरशाही की तुलना अक्सर घोड़े से की जाती है. कल्याण सिंह जब मुख्यमंत्री थे, तब एक बार उन्होंने यहां तक कह डाला था कि नौकशाही रूपी घोड़े को वह ही क़ाबू में रख सकता है जिसकी रानों में ताक़त और लगाम को अपने ढंग से खींचने की क्षमता हो. ग़ौरतलब है कि नौकरशाही पर कल्याण सिंह की पकड़ की चर्चा काफी दिनों तक रही थी. यह बात दूसरी है कि कुसुम राय के बीच में आ जाने पर यह पकड़ कुछ ढीली हो गई थी. पूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय वीर बहादुर सिंह की भी नौकरशाही पर जबर्दस्त पकड़ थी. वह नौकरशाहों को 'पेपर वेट' की तरह जैसे चाहते घुमाते-फिराते थे, लेकिन उनकी विरासत संभाले उनके पुत्र और वन मंत्री फतेह बहादुर सिंह को पिता के नक़्शे क़दम पर चलना महंगा पड़ गया. मंत्री जी को नसीहत देने के लिए एक नौकरशाह ने ऐसा रास्ता चुना, जिससे मंत्री जी की न केवल जनता के सामने फजीहत हो गई, बल्कि वह उफ भी नहीं कर पाए. पूरा मामला इस प्रकार है.

पिछले दिनों जिला महाराजगंज के पनियरा विधानसभा क्षेत्र के विधायक और मंत्री फतेह बहादुर सिंह क्षेत्र के दौरे पर गए हुए थे. वहां उन्हें बसपा कार्यकर्ताओं ने घेर लिया. कार्यकर्ताओं की एक ही शिकायत थी कि मंडलायुक्त पी.के मोहंती कार्यकर्ताओं की नहीं सुनते हैं, जिस कारण जनता के सामने उन्हें शर्मिंदगी उठानी पड़ती है. कार्यकर्ताओं ने मंत्री जी को यहां तक बताया कि मंडलायुक्त के घनिष्ठ संबंध लखनऊ के पंचम तल में बैठने वाले कई उच्च अधिकारियों से हैं, जिस कारण वे बेलगाम हो गए हैं. फतेह बहादुर सिंह कार्यकर्ताओं का हमेशा ख़याल रखते हैं. उन्हें यह बात असहज लगी. उन्होंने तुरंत मंडलायुक्त मोहंती को फोन लगा दिया. मोहंती ने मंत्री जी के फोन को कोई तवज्जो नहीं दी. यह बात फतेह बहादुर सिंह को काफी नागवार गुज़री. उन्होंने मुख्यमंत्री से इस नौकरशाह की शिकायत करने का मन बनाया तो उनके ही कुछ सहयोगी मंत्री उन्हें हतोत्साहित करने लगे. उन्होंने एक सर्वसमाज के मंत्री और दलित नौकरशाह (जिलाधिकारी) से जुड़ा किस्सा भी सुना दिया. बात ज़्यादा पुरानी नहीं थी, इसलिए सबके दिलो-दिमाग़ में ताज़ा थी. माया कैबिनेट के इस मंत्री की किसी बात पर उस दलित नौकरशाह से मनमुटाव हो गया. इस नौकरशाह को जब मंत्री जी ने अपने अर्दब में लेने की कोशिश की तो नौकरशाह और भी नाराज़ हो गया. इसी नाराज़गी में उक्त नौकरशाह एक दिन अपने कार्यालय से शस्त्र लाइसेंस के ऐसे तमाम आवेदन पत्र, जो सर्वसमाज के लोगों के थे, की छाया प्रति लेकर बहनजी के दरबार में पहुंच गया. बहन जी को उस नौकरशाह ने अपने हिसाब से समझा दिया. उसने बहन जी से मंत्री की जो शिकायत की थी उसका सार यह था कि मंत्री जी अपनी ही बिरादरी वालों का काम कराने में लगे रहते हैं. दलितों और मुस्लिमों की उन्हें बिल्कुल भी चिंता नहीं है. अपने ही समाज के लोगों को सरकारी ठेके-पट्टे दिलाते हैं, जिससे ग़लत संदेश जा रहा है. इस जिलाधिकारी की माया दरबार में सीधी पहुंच है, इसीलिए बहन जी ने उसकी बातों को गंभीरता से लिया. दूसरे ही दिन मंत्री जी के पर कतर दिए गए. उस दिन के बाद से मंत्री जी जिलाधिकारी से कोई सिफ़ारिश करना तो दूर उलटे उन्हें 'सर-सर' कहने लगे.

बात ज़्यादा पुरानी नहीं थी, इसलिए सबके दिलो-दिमाग़ में ताज़ा थी. माया कैबिनेट के इस मंत्री की किसी बात पर उस दलित नौकरशाह से मनमुटाव हो गया. इस नौकरशाह को जब मंत्री जी ने अपने अर्दब में लेने की कोशिश की तो नौकरशाह और भी नाराज़ हो गया. इसी नाराज़गी में उक्त नौकरशाह एक दिन अपने कार्यालय से शस्त्र लाइसेंस के ऐसे तमाम आवेदन पत्र, जो सर्वसमाज के लोगों के थे, की छाया प्रति लेकर बहनजी के दरबार में पहुंच गया. बहन जी को उस नौकरशाह ने अपने हिसाब से समझा दिया.

वन मंत्री फतेह बहादुर सिंह ने पूरी बात ध्यान से सुनी, लेकिन वह अपने इरादे से टस से मस नहीं हुए. आख़िर उनमें अपने पिता के स्वाभिमान का अंश जो था. इसलिए हिम्मत कर उन्होंने बहन जी से मुलाक़ात का समय लेकर उन्हें अपना दुखड़ा सुना ही दिया. मुख्यमंत्री ने उनकी बातों को गंभीरता से सुना. वैसे भी बहन जी की 'गुड लिस्ट' में फतेह बहादुर का नाम सबसे ऊपर तो था ही. वह जब-तब फतेह बहादुर की तारीफ़ करती रहती थीं. फतेह बहादुर हैं भी तारीफ़ के क़ाबिल. वह आजकल के नेताओं से काफी अलग दिखते और लगते हैं. शराब-शबाब से हमेशा दूर रहने वाले मिलनसार फतेह बहादुर सिंह की गिनती काफी व्यवहार कुशल और जुझारू नेता के रूप में होती है. यही वजह है कि बसपा सुप्रीमो ने फतेह बहादुर की शिकायत को काफी गंभीरता से लिया. उन्होंने अपने कार्यालय से मोहंती की रिपोर्ट मंगाई. रिपोर्ट मोहंती के न केवल पूरी तरह पक्ष में थी, बल्कि सारा दोष मंत्री जी का ही बताया गया था. यह देख कर मुख्यमंत्री ने तत्काल फतेह बहादुर को दरबार में तलब कर 'हैसियत' में रहने की नसीहत दे दी.

अगले दिन ही गोरखपुर में अतिक्रमण विरोधी अभियान की शुरुआत मंत्री जी के भाई जितेंद्र के आवास से की गई. अतिक्रमण विरोधी अभियान मंडलायुक्त के ही निर्देश पर चला. मंत्री जी के भाई पर आरोप लगा कि उन्होंने रामगढ़ ताल की कुछ ज़मीन पर अवैध निर्माण करा रखा है. मकान के सामने सरकारी बुलडोज़र देख जितेंद्र सिंह ने लखनऊ में मौजूद भाई फतेह बहादुर सिंह को जानकारी दी. मंत्री जी को पूरा मामला समझते देर नहीं लगी. उन्होंने मौके की नज़ाकत को समझते और फ़ज़ीहत से बचने के लिए अपने भाई से दो टूक कह दिया, जैसा अफसर कहें वैसा करो. अगर वह कहें पूरा मकान अवैध बना है तो पूरा मकान ध्वस्त हो जाने देना. भाई जितेंद्र ने समझदारी से काम लिया. अफसरों से कहा, मैं ख़ुद ही इस निर्माण को गिरवा दे रहा हूं, जिसे आप लोग अवैध कह रहे हैं. इसी के बाद जितेंद्र ने मीडिया को बुला कर इसी के सामने अपना तथाकथित अवैध निर्माण स्वयं ही गिरवा दिया.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मध्यप्रदेश में प्रशासनिक कसावट की कोशिश

संध्या पाण्डे

मध्यप्रदेश के लोकसभा चुनाव में मिली अप्रत्याशित पराजय ने भारतीय जनता पार्टी सरकार की चूलें हिला दी हैं. विधान सभा चुनाव में मोटे तौर पर बेहतर प्रदर्शन करने वाली पार्टी को मध्यप्रदेश का मालवा और निमाड़ अंचल ले डूबा. एक ओर संगठन अब पराजय के कारणों की समीक्षा में लगा है तो दूसरी ओर मुख्यमंत्री प्रशासन को पूरी तरह नियंत्रण में दिखाने के लिए दिन-रात एक किए हुए हैं. मध्यप्रदेश के राजनैतिक हालात भारतीय जनता पार्टी के लिए बहुत अच्छे नहीं हैं. लोकसभा चुनाव में मिली पराजय के कारण राष्ट्रीय स्तर पर जारी आरोप प्रत्यारोपों की छाया मध्यप्रदेश पर भी पड़ रही है. पार्टी को यह उम्मीद थी कि मध्यप्रदेश के क़ाबिल मुख्यमंत्री राज्य की 29 सीटों में से कम से कम 23 सीटों का योगदान आडवाणी जी की प्रधानमंत्री पद की यात्रा के लिए ज़रूर देंगे. परंतु मध्यप्रदेश के मालवा और निमाड़ अंचल की 8 सीटों में से 6 सीटों पर दल को मिली पराजय ने सारे समीकरण उलटे कर दिए. भाजपा के अंदर राज्य स्तर पर ही वर्तमान नीतियों का विरोध सीनियर मंत्री कैलाश विजयवर्गीय और अलोक मिश्रा द्वारा किया जाता स्पष्ट नज़र आता है. कैलाश विजयवर्गीय वैसे भी स्वयं को मुख्यमंत्री पद का सशक्त दावेदार मानते हैं और उनकी इच्छा के विरुद्ध मालवा अंचल में किसी भी राजनैतिक गतिविधि को अंजाम तक न पहुंचने देने के लिए वह सक्षम हैं. दूसरी ओर ग्वालियर क्षेत्र के अनूप मिश्रा पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के भांजे हैं. अपनी तुनकमिज़ाजी और कथित स्पष्ट वादिता के लिए अनूप मिश्रा राज्य में ख़ासे बदनाम रहे हैं.

मध्यप्रदेश में मिली पराजय ने शिवराज सिंह को संकट में डाल दिया है. अभी जबकि संगठन स्तर पर इस बात की विस्तृत जानकारी एकत्र की जा रही है कि पराजय क्यों हुई, शिवराज सिंह पर से ख़तरा टला नहीं है. दूसरी ओर मुख्यमंत्री स्वयं को सरकारी कामकाज में पूरी तरह व्यस्त दिखाकर एक बेफिक्री का प्रदर्शन करना चाहते हैं. इसी क्रम में वर्षों से ढीले पड़े हुए प्रशासन तंत्र को एक रात में ही चुस्त-दुरुस्त करने की कवायद शुरू की गई. मंत्रियों को मंत्री बनने का व्यवहार सिखाया गया. यह बात अलग है कि मुख्यमंत्री बनने के पूर्व शिवराज सिंह को स्वयं किसी भी पद पर काम करने का कोई अनुभव नहीं था. सत्ता के स्तर पर यहां उल्लेखनीय बिंदु सामने आया है कि जिलों में पदोन्नति प्राप्त कलेक्टर बाबू की शैली में अधिक काम कर रहे हैं, प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कम. अब उम्मीद की जा रही है कि राज्य सचिवालय में प्रतिदिन दस बजे मुख्यमंत्री का पहुंचना और तय समयसीमा में काम निपटाने की कोशिश प्रदेश के प्रशासनिक तंत्र की आदत बन सकेगी. दूसरी ओर पराजय के कारणों की समीक्षा करते हुए भारतीय जनता पार्टी एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने राज्य में सत्तासीन होने के बावजूद कई कमज़ोरियों का आकलन प्रथम दृष्टि में किया

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

है. संगठन के सूत्रों के अनुसार भाजपा के कार्यकर्ताओं के मनोबल का टूटना, मंत्रियों का ग़ैर-वाजिब आचरण, सरकार का गिरता अनुभव, सरकार का अत्यधिक आत्मविश्वास और जनता में निरंतर घटती जा रही सरकार की लोकप्रियता का ग़लत आकलन पराजय के मुख्य कारण रहे. यह भी माना जा रहा है कि मालवा और निमाड़ क्षेत्र में भाजपा के सक्षम मंत्रियों द्वारा किया गया विरोध दल के लिए दुखदाई रहा. इस विरोध पर नियंत्रण न कर पाना या इसकी सूचना पूर्व में एकत्र न कर पाना मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की कमज़ोरी मानी जा रही है. आज शिवराज सिंह इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि किसी तरह मध्यप्रदेश को राष्ट्रीय रंगमंच पर एक सफल प्रशासनिक राज्य के रूप में स्थापित कर सकें. परंतु ऐसा हो पाना अब असंभव नजर आता है. प्रशासनिक अधिकारियों से लेकर राज्य के निचले कर्मचारी तक में भ्रष्टआचरण सीमा पर है. राज्य के प्रभावशील नेताओं के नाम पर विकास योजनाओं के लिए आवंटित राशि में से 30-40 प्रतिशत तक कमीशन वसूला जा रहा है. परिणाम यह है कि विकास योजनाओं का जनहितकारी प्रभाव स्थापित करने में सरकार

मध्यप्रदेश में मिली पराजय ने शिवराज सिंह को संकट में डाल दिया है. अभी जबकि संगठन स्तर पर इस बात की विस्तृत जानकारी एकत्र की जा रही है कि पराजय क्यों हुई, शिवराज सिंह पर से ख़तरा टला नहीं है. दूसरी ओर मुख्यमंत्री स्वयं को सरकारी कामकाज में पूरी तरह व्यस्त दिखाकर एक बेफिक्री का प्रदर्शन करना चाहते हैं.

अक्षम प्रमाणित हुई है. प्रशासनिक तंत्र में सरकार के प्रति उपेक्षा का अभाव है. अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के अतिरिक्त सरकारी अधिकारी या कर्मचारियों का कोई अन्य उद्देश्य नज़र नहीं आता. मध्यप्रदेश अनुभवहीन नेता द्वारा संचालित चंबल राज्य जैसा दिख रहा है. इन स्थितियों में कुछ स्थानांतरण कर या सचिवालय में समय पर पहुंच कर इसका प्रचार कराना राजनीतिक सफलता की गारंटी नहीं है. शासन द्वारा किए जा रहे कृत्य वास्तव में एक सरकारी नौटंकी के रूप में सामने आ रहे हैं. सरकारी अफसर किस तरह चिंतामुक्त हैं, इसका प्रमाण इन्हीं अफसरों में से कथित साहित्यकार के रूप में खुजली रखने वाले कई अधिकारियों की कई-कई किताबों का पिछले पांच साल के दौरान निरंतर प्रकाशन माना जा सकता है. भारतीय जनता पार्टी राज्य में अपने राजनैतिक व्यवहार में कहीं पीछे छूट गई है जिसके परिणाम लगभग हर लोकतांत्रिक निर्वाचन के दौरान दल को भुगतने होंगे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मजबूरी को पसंद न कहें

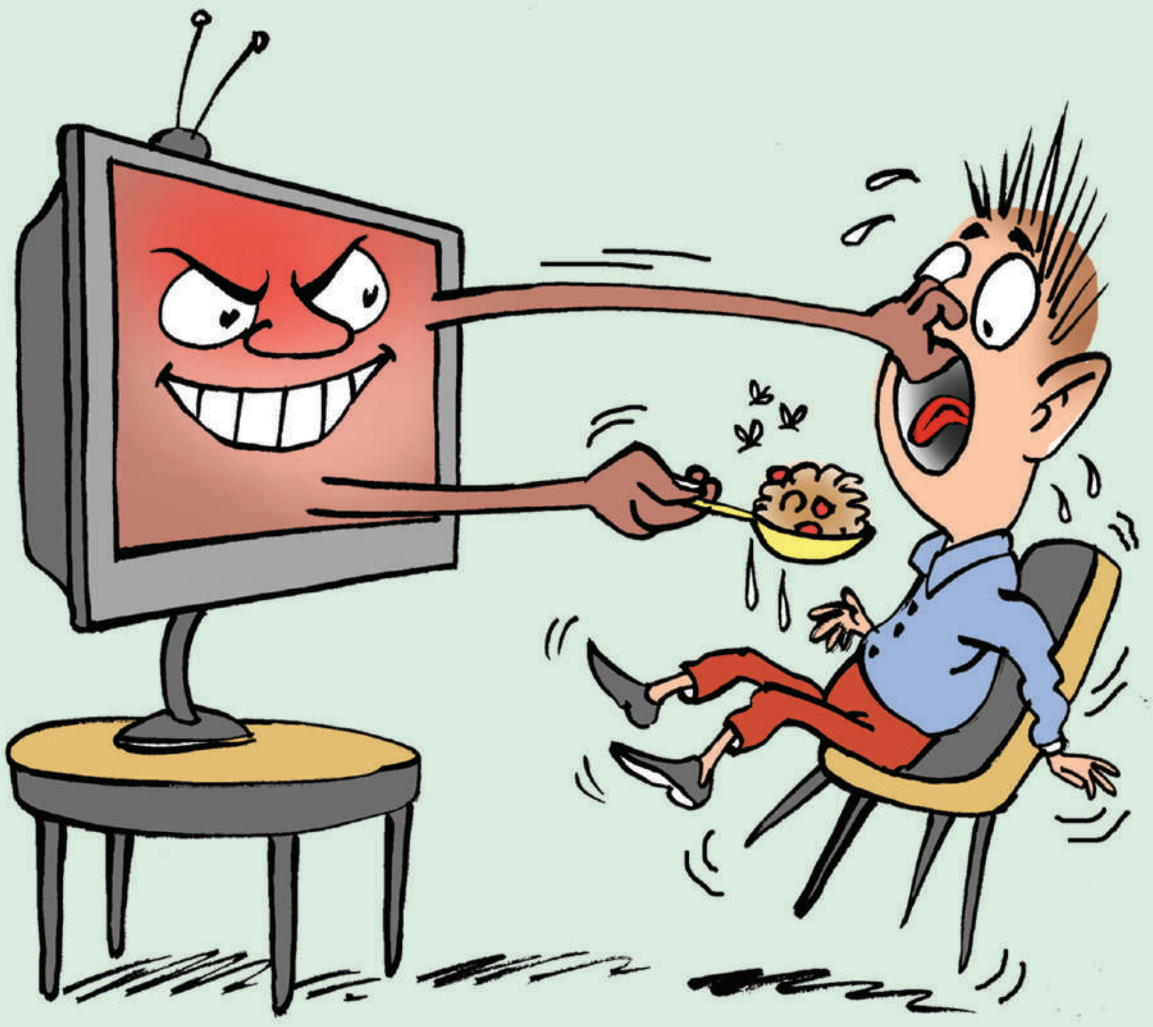

यह अक्सर सुनने को मिल जाता है कि चैनल वही दिखाते हैं, जो लोग देखना-सुनना चाहते हैं. ऐसा कभी फ़ार्मूला फिल्म बनाने वाले भी कहते थे. लेकिन दशक भर पहले और आज की हिंदी फिल्मों की तुलना कर लीजिए, जनरुचि के दबाव में आया फ़र्क़ किसी से छिपा नहीं है. राजकपूर के बाद दूसरे शोमैन कहे जाने वाले सुभाष घई आज किसी फिल्म को निर्देशित करने का साहस नहीं जुटा पाते. लेकिन मीडिया अपने अहंकार में इसे अभी नहीं स्वीकारता. ठीक है, इसके लिए उसके पास वाजिब तर्क होंगे. और वह इसका दावा करता भी है. इसीलिए ख़बरिया चैनल वालों का ऐसे किसी बहस के अंत में आम तौर पर यही कहना होता है-तो किसने कहा है हमें देखने के लिए. आपके हाथ में रिमोट है, टीवी बंद कर लीजिए.

पहले इसका जबाव दे दें, फिर आगे बढ़ते हैं. अभी हाल में एक सब्जी वाले से कहा, परवल तो रंगे हुए दिख रहे हैं. चैनल वाले भी कुछ ऐसा ही रंग दिखा रहे थे. इस पर उसने कहा-भाई साहब, आप से जबरिया तो हम कह नहीं रहे कि यही परवल ख़रीदो. मैं बेच रहा हूं, आप तय करो कि यहां से लोगे या चैनल वालों से.

आशा करता हूं कि ख़बरिया चैनल वालों को जनता की इस बेचारगी के मायने समझ में आ गए होंगे. सवाल है कि ऐसी किसी मजबूरी को जनता की पसंद कहना चाहिए? यह एकदम सही है कि मीडिया अगर अपने समकालीन लोगों की ज़िंदगी को अपना विषय नहीं बनाएगा तो और किसे बनाएगा? और अगर उसका हृदय संवेदनशील है, उसका मस्तिष्क जिज्ञासु है, उसकी आंखें खोजी हैं, तो वह इस अधूरी दुनिया की तस्वीर उतारने से बच नहीं सकता. बचना चाहिए भी नहीं. लेकिन क्या एक अच्छी दुनिया की कामना से मुंह मोड़ कर, सिर्फ़ झुरझुरी पैदा करने के लिए? कतई नहीं. समस्या केवल समकालीन लोगों के जीवन को विषय बनाने की ही नहीं है, बल्कि उससे अधिक जटिल है. सवाल है कि आप यथार्थ के संदर्भ में उनके जीवन को कैसे देखते हैं. एक बात मान कर चलिए कि टीआरपी का अधिक होना सही होने का सर्टिफिकेट नहीं हो सकता.

पूरी दुनिया में अश्लील साहित्य हमेशा से साहित्यिक रचनाओं से अधिक बिकता है, लेकिन उसे पाठ्यक्रमों में शामिल नहीं किया जा सकता. ठीक उसी तरह, जैसे कलयुगी साधु-संतों के अनुयायी सबसे अधिक होते हैं, लेकिन उन्हें ही देश के सर्वोच्च पदों पर नहीं बैठाया जा सकता.

अभी दो-तीन दिन पहले की ही बात है. अलग-अलग चैनलों पर अलग-अलग नौजवानों की पिटाई के दृश्य दिखाए जा रहे थे. कहीं कोई नौजवान प्रेमी पिट रहा था, तो कहीं घरवाली होते हुए भी बाहरवाली के साथ चक्कर चलाने वाला पिट रहा था. मज़े लेता कैमरा हर पिटाई को घर-घर में पहुंचाने का अनजाने से पुण्यकर्म में तल्लीन था.

स्टूडियो में बैठा एंकर अपने वाक्यों को दोहराते-तिहराते लगातार कहे जा रहा था-देखिए, यह लड़की और यह है उसका आशिक़... हाथ में चप्पल लिए शेरनी बनी नारी है वह पत्नी, जिसने आपके टीवी स्क्रीन पर दिख रहे शख्स के साथ कभी सात फेरे लिए थे और आज चप्पलों से उसकी पिटाई कर रही है. अब देखिए उस स्त्री को, जो शादीशुदा होते हुए भी शादीशुदा मर्द के साथ प्रेम कर रही थी. और दूसरी औरत और पहली के पति की पिटाई करतीं महिलाओं को भी देखिए. देखिए कि किस तरह धुनाई करती हुईं दोनों को सबक़ सिखा रही हैं... यानी किसी फुटबॉल मैच की तरह आंखों देखा हाल चल रहा था. यह सब करते और दिखाते समय यह भी नहीं सोचा गया कि इस दंपति के संबंध अब तो किसी भी क़ीमत पर ठीक नहीं हो सकते. अगर थोड़ी-बहुत गुंजाइश बची भी होगी, तो वह ख़त्म हो गई होगी.

अब स्नैप शॉट की तरह इसे यहीं छोड़ तस्वीर के दूसरे पहलू पर चलते हैं. एक चैनल में ब्रेकिंग न्यूज़ चल रहा था-पुलिस वाले कुछ लोगों पर बेरहमी से लाठियां भांज रहे थे. चैनल फिर चीख-चीख कर कह रहा था-किसने दिया है इन्हें क़ानून हाथ में लेने का हक़? अब ज़रा इसी सवाल को पहले वाले दृश्य पर लागू करके देखिए, पूरा मामला समझ में आ जाएगा. यहां मुझे कॉलेज के दिनों में खेला गया एक नाटक याद आ रहा है. *अंधेर नगरी, चौपट राजा* वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र का-*वैदकी हिंसा हिंसा न भवति.* आज विभिन्न चैनलों में यथार्थ के नाम पर चल रही बकवास के बीच इस तरह की भिन्नता आम है. यानी यथार्थवाद की प्रकृति की सच्ची समझ होना एक बात है और मीडिया में उसे अनगढ़ तरीक़े से ढालना दूसरी बात. कहना ही होगा कि यथार्थवाद प्रतिभाहीनता की कमी को पूरा नहीं कर सकता. यथार्थवाद से विचारशून्यता की ख़ामी को पाटा नहीं जा सकता.

सवाल उठता है कि फिर सच्चाई के प्रस्तुतीकरण में विकृति कैसे आ जाती है ? तो इसका सीधा और सरल जवाब यही है कि सच्चाई कोई पका हुआ फल नहीं होती, जिसे जब चाहा तब तोड़ लिया. यह मान लेना सिवाय मूर्खता के कुछ नहीं है कि कथ्य ख़ुद ब ख़ुद शैली भी मुहैया कर देगा.

अंत में, मीडिया का काम घटनाओं की सूची बनाना भर नहीं है, उसका चुनाव भी करना है. यहां आश्चर्यजनक बात यह भी है कि एक ही मीडिया ग्रुप के अंग्रेजी चैनल में जो ख़बरें दिखाई जाती हैं, उनमें उतनी विकृतियां नहीं होतीं. क्यों? क्या ख़बरिया चैनल वाले भाषाई कारणों से ही अंग्रेजी और ग़ैर अंग्रेजी भाषी समाज के दर्शकों को आंकते हैं? यह एक गंभीर सवाल है, जिसकी पड़ताल अगली बार.

गंगेश मिश्र

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चामलिंग के चमत्कार के आगे चित हुआ विपक्ष

बिमल राय

लोकतंत्र की सेहत के लिए विपक्ष को ज़रूरी माना जाता है, पर अगर जनता विपक्ष को पूरी तरह नकार दे, तो इसे क्या कहा जाए? यूपीए, एनडीए और तीसरे मोर्चे की राजनीतिक जंग के नतीजों में उलझे हमारे विश्लेषकों की नज़र पूर्वोत्तर के एक छोटे से पहाड़ी राज्य सिक्किम पर नहीं गई, जिसने एक इतिहास रचा है. क्षेत्रीय दलों के क्षरण और केंद्र में दो दलीय प्रणाली के मज़बूत होने की चर्चा के बीच पवन चामलिंग की उपलब्धि से शायद सबसे ज़्यादा ईर्ष्या हो रही होगी बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य को. चामलिंग ने लगातार चौथी बार राज्य की सत्ता संभालकर अपने पड़ोसी को एक संदेश दिया है कि परिवर्तन विरोधी हवा को किस तरह विकास के पहरेदार राज्य में घुसने से रोक सकते हैं.

कारण अनेक हैं, पर सबसे अहम बात है विकास की, विश्वसनीयता की. राज्य में उपलब्ध संसाधनों के समुचित उपयोग के बूते चामलिंग ने लोगों का विश्वास अर्जित किया है. जंगू परियोजना के लगातार विरोध, भ्रष्टाचार के आरोपों, आपस में टकराने वाली विचारधाराओं के बावजूद एक हुए विपक्ष और उनके पांच साल के आंदोलन-सबका कुछ असर नहीं हुआ. इस बीच सिक्किम में बहुत कुछ बदल गया और यह चामलिंग के पक्ष में गया. खादी के खुरदुरे कपड़े पहनने वाले महात्मा गांधी के नाम पर गंगटोक की सड़क शानदार हो गई है. यहां टाइल्स से सुसज्जित देश की शायद पहली सड़क है, जहां जाकर लगता नहीं कि हम किसी भारतीय शहर में हैं. पिछले साल अंतराष्ट्रीय पुष्प प्रदर्शनी का आयोजन कर चामलिंग ने सिक्किम की ख़ूबसूरती से पूरी दुनिया को अवगत तो कराया ही, गुर भी सिखाया कि फूल की खेती कैसे किसानों की किस्मत बदल सकती है? नाथूला दर्रे ने सिक्किम में निर्यात के बेहतर मौके दिए हैं, तो नए-नए पर्यटन स्थलों के विकास से हज़ारों बेरोज़गारों को रोज़गार मिला है.

उपलब्धियों पर चर्चा के दौरान राज्य के ग्रामीण विकास मंत्री सीबी कार्की ने बताया, जनता ने हमारे ईमानदार प्रशासन व वादों को तहे दिल से लागू करने के पक्ष में जनादेश दिया है. इसी तरह पूर्व सांसद व एसडीएफ के महासचिव भीम दाहाल ने बताया कि विकास की आंधी में विपक्षी कुप्रचार तिनके की तरह उड़ गया और हमें इतनी शानदार कामयाबी मिली. उनका मानना था कि यहां विपक्ष केवल मीडिया के ज़रिए लड़ाई करता है और जनता से उसका कोई सीधा संपर्क नहीं है. सिक्किम में कांग्रेस के साथ माकपा और भाजपा के नेता एक साझा कार्यक्रम बनाकर आंदोलन कर रहे थे, शायद ऐसी मिसाल कहीं और देखने को न मिले. भाजपा जहां पवन चामलिंग की दोहरी नागरिकता का मुद्दा उठा रही थी, वहीं कांग्रेस व दूसरे दल सरकार के कथित भ्रष्टाचार व विपक्ष के प्रति तानाशाही रवैए के बारे में जनता को बता रहे थे. पर आख़िर में जीता विकास का मुद्दा. पर्यटन, गांवों के बुनियादी ढांचे को उन्नत करने तथा युवकों को विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण देकर रोज़गार मुहैया कराने की दिशा में सरकार ने उल्लेखनीय कामयाबी हासिल की है. 60 प्रतिशत वोट के साथ राज्य की सभी 32 विधानसभा सीटें और एक लोकसभा सीट जीतकर लगातार चौथी बार सत्ता में आने वाला सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट देश का पहला क्षेत्रीय गठबंधन बन गया है. हालांकि विपक्षी नेताओं व विरोध पर उतरे मीडिया के एक हिस्से पर उत्पीड़न के आरोपों से ऐसा लगा था कि चामलिंग में भी बुद्धदेव सिम्टम उभर रहा है, पर संयोग से वहां सिंगुर व नंदीग्राम जैसा कोई कांड नहीं हुआ. जंगू की सांस्कृतिक पहचान व पर्यावरण संरक्षित रखने के मुद्दे पर महीनों तक हुए बेमियादी क्रमिक अनशन को ख़त्म कराने के लिए चामलिंग ने कभी बल प्रयोग नहीं किया. टकराव वाले मुद्दों पर विवेक व दूरदर्शिता से काम लेने वाले चामलिंग की रणनीति काम कर गई. हालांकि 1989 में नरबहादुर भंडारी ने भी राज्य की सभी सीटें जीतकर ऐसा ही कमाल किया था. पिछली विधानसभा में कांग्रेस का एक विधायक उपस्थित हुआ करता था, पर उस समय भी नर बहादुर भंडारी चुनाव हार गए थे. तब से आज तक तिस्ता का काफी पानी बह गया है. राज्य कांग्रेस अध्यक्ष नरबहादुर भंडारी दोनों सीटों से हार गए. दूसरी पार्टियों के ज़्यादातर राज्य अध्यक्षों की ज़मानत तक ज़ब्त हो गई. चौथी दुनिया से बात करते हुए सिक्किम कांग्रेस के प्रवक्ता और महासचिव के एन लेप्चा ने स्वीकार किया कि जनादेश चामलिंग की पार्टी के पक्ष में रहा, पर लगे हाथ आरोप भी लगाया कि सत्तारूढ़ दल के लोगों ने वोटरों को डराया-धमकाया और धन बल का ज़ोर दिखाया. एक भी सीट नहीं जीत पाने वाली कांग्रेस को कम से कम 28 सीटों पर जीत की उम्मीद थी. यह भी एक विडंबना ही है कि जिस विजय रथ से एसडीएफ ने राज्य में कांग्रेस को कुचल दिया है, उसी की केंद्र सरकार को उन्होंने बिना शर्त समर्थन दिया है. लेप्चा ने बताया कि पार्टी के नेताओं ने एसडीएफ से किसी तरह का संपर्क न रखने का अनुरोध किया है. इस संबंध में पार्टी के नेताओं ने सोनिया गांधी व राहुल को पत्र भी सौंपा है. लोकसभा चुनावों के पहले मनमोहन सिंह ने कहा था कि क्षेत्रीय दल विकास में बाधक हैं, चुनाव परिणामों से हालांकि यह साबित नहीं हुआ. बीजू पटनायक और नीतीश कुमार के साथ उसी पंक्ति में पवन चामलिंग भी बैठ गए हैं, जिन्होंने राज्य में न राहुल फैक्टर को फटकने दिया और न बंगाल की खाड़ी से उठी सत्ता विरोधी लहर को. अब कोई दो राय नहीं कि जीत की जादुई छड़ी विकास के पिटारे में बंद होती है.

मुख्यमंत्री डॉ पवन चामलिंग

अब शिक्षा को वैश्विक व्यापार बनाने की तैयारी

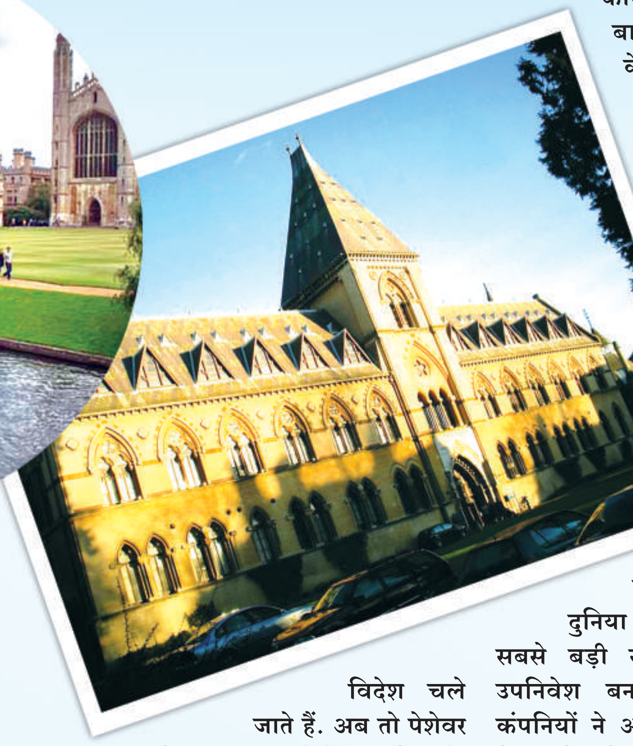

सरकार ने तमाम विरोधों के बावजूद भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थानों को अपना कारोबार करने की खुली छूट देने का फ़ैसला कर लिया है. अब किसी भी दिन इस फ़ैसले की औपचारिक घोषणा हो सकती है. यह महत्वपूर्ण फ़ैसला राजनेताओं ने नहीं, बल्कि पश्चिम परस्त नौकरशाही ने सोच समझ कर लिया है. उनके सौभाग्य से राजनीतिक सत्ता भी पुराने नौकरशाहों के नियंत्रण में ही है, इसलिए इस फ़ैसले को अमल में लाने में आज के शीर्ष सत्ताधारी राजनेताओं को भी कोई आपत्ति नहीं है.

लेकिन, सवाल है कि क्या भारत जैसे प्राचीन और ज्ञान विज्ञान, संमृद्ध देश में आज विदेशी शिक्षा संस्थानों की ज़रूरत है? इस पर गंभीरता से विचार नहीं हुआ है और यदि हुआ भी है, तो पूर्वाग्रह और दुराग्रह से ग्रस्त नौकरशाही ने विरोध और आपत्ति के स्वरों को सुना ही नहीं, या सुनकर अनसुना कर दिया.

एक ओर भारत के शिक्षा क्षेत्र में विदेशी शिक्षा संस्थानों के लिए खुली छूट देने की प्रक्रिया शुरू की जा रही है, तो दूसरी ओर अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि अमेरिकी छात्र को भारतीयों के मुक़ाबले में तैयार करने के लिए अमेरिका के शिक्षण तंत्र में सुधार की ज़रूरत है. अमेरिका में विज्ञान और गणित के क्षेत्र में छात्र पिछड़ते जा रहे हैं और अंग्रेजी ज्ञान, वैश्विक ज्ञान और वाणिज्य व्यापार की शिक्षा में भी भारत और चीन के छात्रों की तुलना में अमेरिकी नौजवान काफी पीछे हैं. सवाल है कि जब अमेरिका अपने देश की शिक्षा प्रणाली और शिक्षा तंत्र से संतुष्ट नहीं है और उसे भारत के मुक़ाबले कमतर मान रहा है, तब भारत को अमेरिका व यूरोप के विश्वविद्यालयों को भारत में पांव फैलाने की इजाज़त देने की ज़रूरत क्यों पड़ रही है?

आस्ट्रेलिया के शिक्षा संस्थानों में अध्ययन कर रहे छात्रों पर रंगभेद और नस्लभेद के कारण ही हिंसक हमले नहीं हो रहे हैं. ये हमले भारतीय छात्रों के मुक़ाबले पीछे रह जाने वाले आस्ट्रेलिया के नौजवानों की खीज का प्रकटीकरण भी हैं.

इसी तरह फ्रांस में कभी सिख नौजवानों की पगड़ी को लेकर विवाद मचाया जाता है, तो कभी भारतीय छात्रों की हेयरस्टाइल और दाढ़ी को लेकर यूरोपीय नौजवान हंगामा खड़ा करते हैं. यह सब वहां बेरोज़गारी और नौकरियों में भारतीयों के मुक़ाबले पीछे रह जाने वाले गोरी नस्ल के नौजवानों का गुस्सा ही है. आर्थिक वैश्वीकरण के इस दौर में शिक्षा, ज्ञान या व्यक्तित्व विकास के लिए नहीं बल्कि केवल धन कमाने के माध्यम हैं. यही कारण है कि मोटे वेतन के पेशे– आईटी इंजीनियर, डॉक्टर, चार्टर्ड अकाउंटेंट, प्रशासक आदि–की शिक्षा पिछले 15 वर्षों में साल दर साल महंगी होती जा रही है. आज भारत में उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा को निजी क्षेत्र के हवाले किया जा रहा है. यह निजी क्षेत्र केवल शिक्षा का व्यापार ही करता है. औसत दर्जे के मेडिकल कॉलेज में पेशेवर डॉक्टर बनने के लिए एक छात्र को कम–से–कम 20 से 25 लाख रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं. पीजी डिग्री के लिए भी इतना ही ख़र्च करना होता है. इसलिए 25 लाख में डॉक्टर और 50 लाख रुपये में विशेषज्ञ डॉक्टर बनने वाला लोकसेवा और जनता के स्वास्थ्य रक्षा की मिशनरी सेवा भला कैसे कर सकता है. भारत के आईटी इंजीनियर, कंप्यूटर इंजीनियर और दूसरे तकनीकि विशेषज्ञ भारत में निजी क्षेत्र के संस्थानों में लाखों रुपये ख़र्च करने के बाद उपाधि लेकर विदेश जाना पसंद करते हैं, ताकि शिक्षा के लिए ख़र्च की गई उनकी लागत जल्दी उन्हें वापस मिल सके.

भारत से प्रतिभा पलायन की समस्या पर शासन–प्रशासन में चर्चा तो होती है, लेकिन प्रतिभा पलायन को परोक्ष प्रोत्साहन भी दिया जाता है दूसरी ओर, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे क्षेत्रों में डॉक्टरों की भारी कमी है. इसकी भरपाई के बदले भारत के पढ़े–लिखे डॉक्टर डिग्री लेते ही विदेश चले जाते हैं. अब तो पेशेवर शिक्षा की दुकानों ने भी दुनिया के रोज़गार बाज़ार को ध्यान में रखकर काम करना शुरू कर दिया है. उदाहरण के लिए, अख़बारों में विज्ञापन के ज़रिए युवा वर्ग को बताया जाता है कि अगले पांच सालों में यूरोप को एक लाख डॉक्टरों और साढ़े छह लाख नर्सों की ज़रूरत है. इस विज्ञापन का असर यह होता है कि नौजवान डॉक्टर बनने ओर नर्स बनने की शिक्षा देने वाले संस्थानों में भरपूर पैसा देकर शिक्षा पाने के लिए भीड़ लगा लेते हैं. भारत में भी विमान चालक, एयरहोस्टेस और कंप्यूटर इंजीनियर बनाने का भरोसा दिलाकर शिक्षा की कई दुकानें सफलतापूर्वक बड़े ही नहीं, मझोले शहरों में भी चल रही हैं.

विदेशी शिक्षा संस्थानों के भारत में प्रवेश और उनके द्वारा पांव जमा लेने के बाद शिक्षा का यह कारोबार वैश्विक रोज़गार बाज़ार और बहुराष्ट्रीय कंपनी के हितों को ध्यान में रखकर चलाया जाएगा. भारतीयों को मोटे वेतन और बेहतर सुविधा भोगी जीवन के सपने दिखाकर ये संस्थान अपने यहां शिक्षा पाने के लिए लालायित करेंगे और मोटी फीस वसूलेंगे. फीस नहीं चुका सकने वाले प्रतिभावानों को शिक्षा ऋण की सुविधा देकर अपना गुलाम बनाएंगे.

दुनिया में सांस्कृतिक प्रजनन की सबसे बड़ी संस्था–शिक्षा को अपना उपनिवेश बनाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अब आक्रामक रूप अपना लिया है और इसी आक्रामक रूप का प्रदर्शन भारत जैसे देश में विदेशी शिक्षा संस्थानों के प्रवेश के ज़रिए मिलने लगा है. शिक्षा का संबंध विकास और जनता के कल्याण से जोड़ा जाता है, लेकिन पश्चिमी शिक्षा का संबंध केवल बाज़ार और व्यक्ति की गुलामी के उद्देश्यों से जुड़ा हुआ है. प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में आठ जुलाई 2005 को जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने केंब्रिज के एक इतिहासकार के हवाले से बताया था कि ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन से पहले सन 1700 में दुनिया की आय में भारत का हिस्सा 22.6 प्रतिशत था, और पूरे यूरोप का हिस्सा लगभग 23 प्रतिशत था. लेकिन अंग्रेजी शासन के बाद 1952 में विश्व आय में भारत का हिस्सा मात्र 3.8 प्रतिशत रह गया. भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के ताज में सबसे बड़ा और चमकदार रत्न माना जाता था, लेकिन भारत तब दुनिया का सबसे ग़रीब देश था. आज़ादी के बाद भारत ने आर्थिक–सामाजिक क्षेत्र में अपनी शिक्षा के बूते ही तरक़्क़ी की है और आज 21वीं सदी में भारत दुनिया की आर्थिक महाशक्तियों से होड़ लेने की स्थिति में है. अमेरिका, ब्रिटेन और जापान जैसे देश भारत की बढ़ती आर्थिक शक्ति और हैसियत से चकित होकर अब चिंतित भी हैं. केवल संस्कृत, धर्म या आध्यात्म और योग विद्या ही नहीं, आधुनिक ज्ञान–विज्ञान, तकनीक के सभी क्षेत्रों में भारत दुनिया के संपन्न देशों से कड़ा मुक़ाबला करने की स्थिति में है. भारत को अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली और शिक्षा संस्थानों में सुधार करने और उन्हें सक्षम बनाने की ज़रूरत है, न कि 3100 करोड़ रुपये के वार्षिक उच्च शिक्षा के कारोबार में विदेशी विश्वविद्यालयों को लूट की खुली छूट देने और भारतीय शिक्षा को बिगाड़ने के लिए उदारतापूर्वक आमंत्रित करना चाहिए. यदि भारत में विदेशी विश्वविद्यालय अपने पांव जमाने में सफल रहे, तो भारत में शिक्षा का व्यापार समाज में मारक स्पर्धा को जन्म देगा और इससे हमारी सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ेगा. इसके साथ ही भारत से प्रतिभा पलायन की समस्या और भी गंभीर हो जाएगी और हम प्रतिभा के मामले में कंगाल हो जाएंगे.

विनय दीक्षित
(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और स्तंभकार हैं)
feedback.chauthiduniya@gmail.com

रेगिस्तान में भारतीय सेना का जौहर

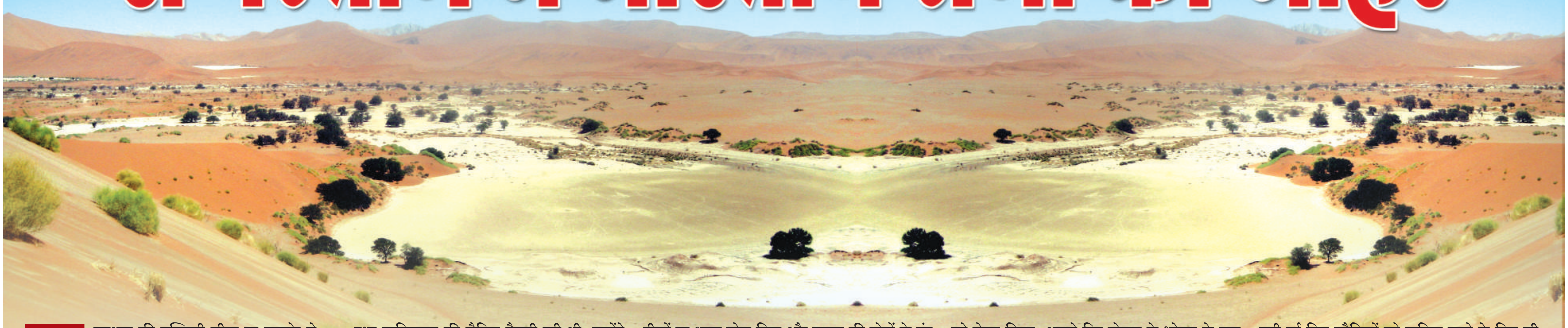

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर बाड़मेर से सटा हुआ सिंध का मरुप्रदेश ऐसा क्षेत्र है, जहां 1965 व 1972 दोनों युद्धों में भारतीय सैनिकों ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया. जहां बांग्लादेश में बढ़ती हुई भारतीय सेना के सामने मुख्य समस्या असंख्य नदियों और नालों को पार करने की थी, वहां इस इलाक़े में मुख्य कठिनाई रेगिस्तान में आगे बढ़ने की थी. चप्पे–चप्पे में जहां बालू के ऊंचे–ऊंचे टीले थे, वहीं मीलों दूर तक कोई वृक्ष या पानी दिखलाई नहीं पड़ता. ऐसे में सेना को बढ़ने में कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा होगा, इसका अनुमान उस क्षेत्र में जा कर ही लगाया जा सकता है. यह सच है कि भारतीय जवानों को उस क्षेत्र में दो से तीन फीट गहरी रेत से गुज़रना पड़ा था.

वहां की कठिन परिस्थितियों के बारे में 1971 की लड़ाई के वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मेजर जनरल आर.जी.आनंद के ये शब्द स्थिति की सही तस्वीर बताते हैं. दुश्मन से पहले हमें रेगिस्तान से लड़ना पड़ा. क़दम–क़दम पर निस्संदेह यह मोर्चा, जिसमें हमारे जवान तेज़ी से आगे बढ़े, भयंकर कठिनाइयों का संगम है. यातायात व संचार के साधन नहीं और जो है भी, उनसे यात्रा बहुत कठिन है. दूर–दूर तक न आपको पानी मिल सकता है और न पशु, न मनुष्य, न पक्षी, न गांव और न शहर. इस क्षेत्र में सप्लाई के लिए ऊंटों, घोड़ों और गधों की मदद ली जाती है. यहां एक–दो या तीन टन की सैनिक गाड़ियां नहीं जा सकतीं, ट्रक भी नहीं. एक टन की गाड़ी का चलना भी मुश्किल है. हवाई जहाज और हेलीकॉप्टर उतारना भी यहां बहुत कठिन है, क्योंकि सभी जगह रेत ही रेत है. हेलीकॉप्टर उतारने के लिए सेना ने बड़ी सूझबूझ से नारियल के रेशों की चटाइयां बिछाईं, ताकि हेलीकॉप्टर उतरने के समय धूल में न धंस जाए.

उधर पाकिस्तान की सैनिक तैयारी पूरी थी. उन्होंने इस मोर्चे पर सात बटालियन नियमित सेना, दो मुजाहिद बटालियन, दो सहायक बटालियन, एक गुरिल्ला युद्ध में विशेषज्ञ प्रशिक्षण प्राप्त सुरक्षा दल, एक मोर्टार रेजिमेंट, एक लाइट मोर्टार टुकड़ी, शमर्न टैंकों का एक स्क्वाड्रन, चीनी टी 57 टैंकों का एक रेजिमेंट नियुक्त कर रखा था. इसके अलावा शत्रु ने भारी मात्रा में हथियार और गोला–बारूद, टैंकों को तोड़ने के गोले और बारूदी सुरंगें जमा कर रखी थीं. इतनी बाधाओं और शत्रु की सैनिक तैयारी के बावजूद भारतीय सेना ने जिस तरह सिंध में गदरा रोड से खोखरापार तक का एक बहुत बड़ा इलाक़ा अपने क़ब्जे में कर लिया, वह साहस का एक अनोखा ही नमूना है.

गदरा शहर पर क़ब्ज़ा दरअसल अद्‌भुत सूझबूझ का परिचय था. 1965 के भारत–पाक युद्ध में भी भारतीय सैनिकों ने इसी प्रकार अद्‌भुत शौर्य, साहस और सूझबूझ का परिचय दिया था. गुजरात में तैनात हमारी गढ़वाल राइफल्स की एक बटालियन को बाड़मेर पहुंचने का आदेश मिला और वह केवल 51 घंटों में 550 मील से अधिक का रास्ता तय करके अपने निश्चित स्थान पर पांच सितंबर 1965 को पहुंच गई. तुरंत ही गदरा शहर पर क़ब्ज़े की योजना बनाई गई और कार्यवाही शुरू कर दी गई. हमारी फौज को कई टुकड़ियों में बांट दिया गया और सात सितंबर 1965 को सवेरा होने के पहले ही गदरा शहर के पास जा पहुंची. टैंकों और मोर्टार से गोलीबारी की गई. शत्रु के ज़्यादातर सैनिक पिछली रात ही शहर छोड़कर चले गए थे. गदरा शहर में हमारे टैंक दो तरफ़ से घुसे और शहर पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया, जबकि वहां शत्रु की तीन कंपनियां तैनात थीं. कुछ समय बाद रेत के टीलों पर से मोर्टार और तोपों से गोलीबारी शुरू कर दी गई. हमारी टुकड़ियों ने कई दिशाओं से आगे जाकर उन टीलों पर धावा बोल दिया और दुश्मन की तोपों के मुंह बंद कर दिए. दिन के 12 बजे तक शत्रु का सफाया हो गया. आठ पाकिस्तानी सैनिकों की लाशें बरामद की गईं. क़रीब 30 शत्रु सैनिक घायल हुए और चार सैनिक हमारे क़ैदी बन गए. बहुत सी सैनिक गाड़ियां और हथियार, गोला–बारूद हमारे हाथ लगे. यहां के युद्ध के दौरान एक मज़ेदार घटना घटी. शत्रु द्वारा छोड़े गए सामान से भारतीय सेना के जीप ड्राइवर मनवर सिंह को एक डिब्बा हाथ लगा. उसने डिब्बे के पदार्थ का रात को सेवन किया. अगले दिन दोपहर के भोजन के बाद उसने वह डिब्बा अपने अफसरों के सामने सेवन के लिए पेश किया. इस पर उसके अफ़सरों ने कहा, पागल यह चॉकलेट नहीं है, यह तो जुलाब है. इस पर ड्राइवर बोला– साहस मैं अब समझा, सुबह मुझे क्या हुआ था. 11 सितंबर 1965 को रात के 11 बजे भारतीय सेना की टुकड़ी 13 ऊंटों, कुछ तोपों, मोर्टारों के साथ गदरा शहर से डाली पर हमले के लिए रवाना हुई. टुकड़ी डाली के उत्तर में ऊंचे टीलों पर पहुंच गई. दोनों ओर से गोलीबारी हुई और कुछ समय बाद हमारी सेना ने वहां मोर्चा बांध लिया. शत्रु की वहां पर केवल एक कंपनी थी और उन्होंने भारतीय सेना के बड़े हमले होने की आशंका से वह जगह भी खाली कर दी. उनके साथ–साथ जस्से के पार पर भी भारतीय सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया. इस युद्ध में बार–बार पाकिस्तानी विमानों के हमले होते रहते थे. भारतीय सैनिक पलक झपकते ही हमले से बचाव के लिए छुप जाते थे. ख़तरा टलने पर वे फिर आगे बढ़ने लगते थे.

> **पाकिस्तानी सैनिकों का हौसला 23 सितंबर 1965 को पस्त पड़ गया. उस समय दिन के साढ़े तीन बजे थे. युद्धविराम के पूर्व पाक सेना ने अपनी हारी हुई जिन चौकियों को हासिल करने के लिए जी–तोड़ कोशिश की, उनमें सकरबू भी शामिल है. शत्रु ने 22 सितंबर को पौन बजे ज़ोरदार गोलीबारी शुरू की. क़रीब दो कंपनियों ने हमले में भाग लिया.**

एक बार हवाई हमले की आशंका में ही एक मनोरंजक घटना हुई. कैप्टन सुखदेव सिंह ने अपने आगे की गाड़ियों को रुकते हुए और उनके ड्राइवरों को उतर कर सड़क के दोनों ओर जाते हुए देखा. सुखदेव सिंह ने यह समझा कि हवाई हमले के कारण रुकने का आदेश दिया गया है और हमले से बचने का उपाय सोच ही रहे थे कि आगे की रुकी हुई गाड़ियां फिर चलने लगीं. सुखदेव सिंह ने आगे जाकर उनसे पूछा कि जब शत्रु का कोई हवाई हमला नहीं था, तुम लोग क्यों छिपने भागे. इस पर उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम हवाई हमले से बचने के लिए नहीं, तरबूज खाने के लिए गए थे. पाकिस्तानी सैनिकों का हौसला 23 सितंबर 1965 को पस्त पड़ गया. उस समय दिन के साढ़े तीन बजे थे. युद्धविराम के पूर्व पाक सेना ने अपनी हारी हुई जिन चौकियों को हासिल करने के लिए जी–तोड़ कोशिश की, उनमें सकरबू भी शामिल है. शत्रु ने 22 सितंबर को पौन बजे ज़ोरदार गोलीबारी शुरू की. क़रीब दो कंपनियों ने हमले में भाग लिया. उसके अलावा शत्रु के पास अनेक मोर्टार और तोपें भी थीं. पाकिस्तानी वायुसेना भी उनकी सहायता के लिए आ गई. शत्रु की चालों को विफल करने के लिए कर्नल (अब ब्रिगेडियर) कृष्ण प्रसाद लाहिड़ी स्वयं कुमुक लेकर अग्रिम चौकी पर पहुंचे और न केवल वहां पर हमला विफल कर दिया, बल्कि कई और स्थानों को भी भारत के क़ब्ज़े में ले लिया. उन्हें इस अद्‌भुत साहस और नेतृत्व के लिए वीरचक्र प्रदान किया गया था. शत्रु के सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मारे गए थे. उन्होंने लगभग दिन में पौने चार बजे पुनः हमला. पर फिर भी उन्हें कोई सफलता नहीं मिली. कुछ मिलाकर 25 शत्रु सैनिक मारे गए और 50 आहत हुए. 1965 और 1971 के दोनों युद्धों में पाकिस्तानी सैनिकों का हौसला पस्त रहा और भारतीय सेना का मनोबल ऊंचा रहा. पाक सैनिक कितना घबराए हुए थे, इसका आभास इस घटना से हो जाता है. मियांजल्लार की लड़ाई में विजय प्राप्त करने के पश्चात एक भारतीय सैनिक अधिकारी ने अपने एक अर्दली को अपना एक थैला लाने के लिए भेजा जो रेत में छूट गया था. वह जब बालू के टीले के पीछे गया तो वहां तीन पाक सैनिक छिपे थे. अर्दली को देखकर उन्होंने समझा भारतीय सेना को हमारा पता चल गया है. उन्होंने घबराकर फौरन अर्दली के समक्ष ही आत्म समर्पण कर दिया.

रघुनाथ कृष्ण भटनागर
(लेखक राष्ट्रपति के प्रेस सचिव और प्रधानमंत्री नरसिंह राव व आईके गुजराल के मानद सलाहकार रह चुके हैं.)
feedback.chauthiduniya@gmail.com

ग़रीबों के रहनुमा थे वीपी सिंह

वीपी के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने दो दिसंबर 1989 को अपना कार्यभार संभाल लिया. चौधरी देवीलाल उप प्रधानमंत्री बनाए गए. राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार तो बन गई पर उसमें घटकवाद जारी रहा. मेहम कांड को लेकर देवीलाल नाराज़ रहने लगे तो चंद्रशेखर का भी वीपी से दुराव जारी रहा. फिर भी जिन मुद्दों पर सरकार बनी थी, वीपी ने सब पर अमल किया. सबसे चौंकाने वाली बात उनके द्वारा सात अगस्त 1990 को मंडल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करने की घोषणा थी. वीपी का यह निर्णय भारतीय इतिहास में वंचितों के उत्थान के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ.

जन्मदिन पर विशेष

जब सामाजिक जीवन विचार-केंद्रित, सार्थक परिवर्तन- परिचालित न हो, जन आंदोलन रहित हो जाए, ताक़तवर लोगों की सरपरस्ती के तहत ही जीने की मजबूरी हो, लोकतंत्र के विकास के लिए न कोई आकांक्षा हो न तैयारी, व्यापक असमानता, कुव्यवस्था, बेरोज़गारी ही संरचना का चरित्र हो जाए, राजनीति का अकेला अर्थ हो जाए सत्ता के ज़रिए धन का संग्रह- वैसे समय में वीपी सिंह जैसे इतिहास पुरुष की याद आनी स्वाभाविक है, जो कुछ माह पूर्व ही हमसे जुदा हो गए हैं. अंग्रेजों का जमाना था. उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद तहसील की दो रियासतें थीं- डैया और मांडा. विश्वनाथ प्रताप सिंह का जन्म इसी डैया के राजघराने में 25 जून, 1931 को हुआ था. बचपन का लालन-पालन अपनी मां की गोद में यहीं हुआ, लेकिन अपने मूल पिता के परिवार में बालक विश्वनाथ का रहना पांच वर्ष तक ही हुआ. डैया के बगल की रियासत मांडा के राजा थे राजा बहादुर राम गोपाल सिंह. वह नि:संतान थे. अपनी राज परंपरा चलाने के लिए उन्होंने बालक विश्वनाथ के माता-पिता की सहमति से उन्हें गोद ले लिया. फिर तो विश्वनाथ ने पीछे नहीं देखा. गंभीरता से पठन-पाठन में जुट गए. परिणामस्वरूप हाईस्कूल तक कई विषयों में उत्कृष्टता मिली. बाद में वह बनारस के उदय प्रताप सिंह कॉलेज में पढ़ने आए. वहां अच्छे छात्र की पंक्ति में थे विश्वनाथ. प्रिंसिपल ने उन्हें प्रफेक्ट बनाया. तब तक भारत को आज़ादी मिल चुकी थी. विश्वनाथ की मसें भी भींग रही थीं. विश्वनाथ ने छात्र संघ गठित करने की मांग रखी. अध्यक्ष पद के लिए प्रिंसिपल का एक लाड़ला छात्र खड़ा हुआ. उसे गुमान था कि वह प्रिंसिपल का उम्मीदवार है. प्रतिरोध व्यवस्था में पक्षपात के ख़िलाफ़ विश्वनाथ के कान खड़े हुए. आजीवन इस्तीफों से मूल्यों को खड़ा करने वाले, ग़लत का प्रतिरोध करने वाले भावी वीपी का यही उदय था. बस क्या था, प्रफेक्ट पद से इस्तीफा दे दिया. यह उनकी ज़िंदगी का पहला इस्तीफा था. समान विचारों के छात्रों ने संघ के अध्यक्ष पद के लिए उन्हें खड़ा कर दिया. युवा कांग्रेस का आग्रह टालकर वह स्वतंत्र उम्मीदवार बने और प्रिंसिपल के उम्मीदवार को हराकर जीत गए. वोट को आकृष्ट करने की क्षमता का यही बुनियादी अनुभव बना वीपी का. राजनीति इसी अंतराल में इनका विषय बनी. उनके व्यक्तित्व में दो ध्रुव थे. वैज्ञानिक बनने की और सामाजिक कार्यों से मान्यता की मंशा थी. चित्रकारी सामाजिक ध्रुव का हिस्सा थी. इन ध्रुवों के बीच कोई महत्वकांक्षा नहीं थी. इसी के बीच एक ठोस वीपी का उदय हुआ. 24 साल वर्ष की आयु में वह राजनीति की तरफ़ संयोगवश मुख़ातिब हो गए. यहां भी वोट की राजनीति की कल्पना नहीं थी. 1955 में कांग्रेस के चवन्निया सदस्य बने, 24 साल की उम्र में. कांग्रेस में आने का विचार इतर था-सत्ता में हिस्सेदारी नहीं. अपने इलाक़े के साधारण आदमी की सुनवाई जो नहीं हो रही थी, वही उनकी राजनीति का कालांतर में केंद्र बना.

वीपी तन-मन से कांग्रेस की राजनीति में आ गए. 1957 में कठौली गांव के एक भूदान शिविर में अपना एक मात्र फार्म लैंड 200 एकड़ की उपजाऊ और नहर से जुड़ी भूमि- बिल्कुल सड़क के किनारे वाली-भूदान में दे दी. तब विनोबा भावे ने कहा था कि राजपुत्र सिद्धार्थ ने त्याग किया तो संसार का कल्याण हुआ. राजपुत्र विश्वनाथ ने आज जो त्याग किया है, उससे भविष्य में भारत का कल्याण होगा.

1969 के विधान सभा चुनाव में वह सोरांवा विधानसभा सीट से जीतकर विधानसभा पहुंच गए. यहीं से उनका राजनीतिक प्रशिक्षण शुरू हुआ. विधायक के रूप में 1974 तक का कार्यकाल बचा था. लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों में उन्हें 1971 का लोकसभा चुनाव फूलपुर क्षेत्र से लड़ना पड़ा. इस चुनाव में उन्होंने जनेश्वर मिश्र जैसे तपे-तपाए समाजवादी नेता को पछाड़ा था. वह राजनीति के मानचित्र पर आ गए थे. 10 अक्टूबर, 1976 को इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में व्यापार के उपमंत्री बना दिए गए. जहां दिसंबर 1976 तक रहे. आपातकाल की समाप्ति के बाद जनवरी 1977 में नए चुनाव की घोषणा हुई. वीपी को फूलपुर से चुनाव लड़ना पड़ा. आपातकाल की ज़्यादती का फल उस चुनाव में कांग्रेसियों को भोगना पड़ा. इंदिरा भी हारीं, वीपी भी.

सत्ता बदल गई. केंद्र में पहली बार ग़ैर कांग्रेसी सरकार का आगमन हुआ. कांग्रेस के लोग इंदिरा को छोड़ रहे थे. वीपी ने इंदिरा का साथ नहीं छोड़ने का निर्णय लिया. उन्होंने इंदिरा का साथ दिया. जनता शासनकाल में इंदिरा गिरफ़्तार हुईं. इसके विरोध में कांग्रेसियों का जेल भरो अभियान शुरू हुआ. वह दिल्ली कोर्ट में पेश हुईं तो उस प्रदर्शन में वीपी भी थे. आंसू गैस छोड़े गए. गोलों का पहला अनुभव हुआ. वीपी ने इलाहाबाद में तीन बार जेल भरो अभियान चलाया. नैनी जेल में बंद किए गए. यह आज़ाद भारत में वीपी की पहली जेल यात्रा थी.

जनवरी 1980 में इंदिरा गांधी की केंद्र में वापसी हुई. वीपी इस बार इलाहाबाद सीट से जीतकर लोकसभा पहुंचे. लेकिन केंद्रीय मंत्रिमंडल में उन्हें जगह नहीं मिली. लोकसभा सदस्य बने छह माह भी नहीं हुए थे कि एक दिन इंदिरा गांधी का बुलावा आया और उन्होंने पार्टी प्रमुख के सामने वीपी को बताया कि आप उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हैं. अपना मंत्रिमंडल बनाइए. वीपी ने इस ज़िम्मेदारी को चुनौती की तरह स्वीकार किया. वीपी मंत्रिमंडल गठन में गुटों से परे रहे. उन्होंने ख़ुद को छोटा नहीं बनाया, व्यापक राजनीति शुरू की. पहला मुद्दा था दलितों-पिछड़ों का. उन्होंने पिछड़े वर्ग के एक वकील को हाईकोर्ट का जज बनाया. राज्य में पिछड़े वर्गों के लिए मंडल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू किया. फिर आई डकैतों की समस्या. इसके लिए वीपी अपनी कुर्सी तक को जोख़िम में डालने से नहीं चूके. उन्होंने अफसरों को अपना इस्तीफा देने तक की धमकी दी. अफसर सक्रिय हुए. एक मुठभेड़ में थानेदार, सिपाही मारा गया तो मुख्यमंत्री ख़ुद उन्हें कंधा देने पहुंचे. शहादत की यह इज़्ज़त थी. पुलिस का मनोबल बढ़ा. डकैत घिरने लगे. इससे वीपी को ख़ूब राष्ट्रीय प्रचार और यश मिला. वह राष्ट्रीय परिदृश्य पर छा गए. इसी बीच वीपी जिंदवारी क्षेत्र से विधानसभा के लिए भी चुने गए. वीपी के बड़े भाई चंद्रशेखर सिंह एक दिन डकैतों द्वारा ग़लतफहमी में मारे गए. उन्हीं दिनों मुलायम सिंह यादव ने आरोप लागाया कि वीपी के निर्देश पर डकैतों के नाम पर भारी संख्या में पिछड़े मारे जा रहे हैं. इससे वीपी को बड़ा क्षोभ हुआ. बिना किसी से परामर्श लिए वीपी ने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया. इस तरह वीपी जून 1980 से जून 1982 तक सिर्फ़ दो साल उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे.

वीपी अब कांग्रेस की राजनीति का अपरिहार्य हिस्सा हो चुके थे. जुलाई 1983 में वह राज्य सभा के सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए. यहां वह अप्रैल, 1988 तक रहे. फिर केंद्र में 29 जनवरी, 1983 से सितंबर 1984 तक वाणिज्य मंत्री रहे. आपूर्ति मंत्रालय का अतिरिक्त प्रभार भी संभाला. सितंबर 1984 में उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बने. दिसंबर 1984 से जनवरी 1987 तक भारत सरकार के वित्त मंत्री रहे. इंदिरा गांधी की असामयिक हत्या के बाद राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने. उन्होंने भी वीपी को वित्त मंत्री बनाया. वित्त मंत्री वीपी ने महसूस किया कि इस व्यवस्था में केवल धनपतियों की चलती है. तब वीपी ने पूंजीवादी, काले धनपतियों और कर चोरों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूंक दिया. वीपी वित्त से रक्षा मंत्री बना दिए गए. रक्षा मंत्री के रूप में वीपी ने बोफोर्स सौदे में दलाली के मुद्दे को उठाया और पूरे देश के जनमानस को उद्वेलित कर सत्ता के चरित्र का पर्दाफाश कर दिया. तब तक प्रधानमंत्री राजीव गांधी से उनका मतभेद काफी बढ़ चुका था. उन्होंने रक्षा मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया. वीपी को नहीं मालूम था कि जनता उनके नेतृत्व का इंतज़ार कर रही है. मुजफ़्फ़रनगर के किसान सम्मेलन में लाखों की भीड़ को देखकर वीपी को पता चल गया कि देश की जनता उन्हें अपना नेता मान चुकी है. 19 जुलाई 1987 को वीपी को कांग्रेस से निकाल दिया गया. कांग्रेस से अलग होकर वीपी ने जन समस्याओं के निदान के लिए जनमोर्चा का गठन किया. वीपी को व्यापक जन समर्थन मिलने लगे. इसी बीच अमिताभ बच्चन के इस्तीफे से ख़ाली हुई इलाहाबाद की सीट से वीपी ने निर्दलीय लड़कर कांग्रेस के सुनील शास्त्री को सवा लाख वोटों के अंतर से हारा दिया. वीपी के प्रयास से व्यापक विपक्षी एकता बनी. सात प्रमुख विपक्षी दलों को मिलाकर एक राष्ट्रीय मोर्चा तैयार हुआ. राजीव सरकार को वीपी ने भ्रष्टाचार, महंगाई समेत कई मुद्दों पर घेरना शुरू कर दिया. बोफोर्स मुद्दा अग्रणी बना. लोकसभा का चुनाव जनवरी, 1990 में होना चाहिए था. लेकिन राजीव गांधी ने नवंबर, 1989 में ही चुनाव कराने का निर्णय ले लिया. वीपी को पूरे देश में चुनावों का संचालन देखना पड़ा. कोई बड़ा आंदोलन नहीं हुआ, कहीं रक्तपात भी नहीं हुआ. केवल जनता की इच्छा थी कि सत्ता और विकास आम आदमी के दरवाज़े तक जाए. इसलिए जनता ने उस चुनाव में कांग्रेस को सताच्युत कर दिया. राष्ट्रीय मोर्चा पूर्ण बहुमत में आया. वीपी के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने दो दिसंबर 1989 को अपना कार्यभार संभाल लिया. चौधरी देवीलाल उप प्रधानमंत्री बनाए गए. राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार तो बन गई पर उसमें घटकवाद जारी रहा. मेहम कांड को लेकर देवीलाल नाराज़ रहने लगे तो चंद्रशेखर का भी वीपी से दुराव जारी रहा. फिर भी जिन मुद्दों पर सरकार बनी थी, वीपी ने सब पर अमल किया. सबसे चौंकाने वाली बात उनके द्वारा सात अगस्त 1990 को मंडल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करने की घोषणा थी. वीपी का यह निर्णय भारतीय इतिहास में वंचितों के उत्थान के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ.

मंडल कमीशन के लागू होने से नाराज़ भाजपा ने अपने वादे से मुकरते हुए राम जन्मभूमि के मामले पर सरकार पर दबाव बनाना शुरू कर दिया. वीपी ने इस विवाद को सुलझाने के लिए कई बैठकें बुलाईं, लेकिन नतीजा सिफ़र रहा. आख़िरकार भाजपा ने वीपी सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया. सरकार अल्पमत में आ गई और सात नवंबर 1990 को वीपी ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया. इसी बीच पूर्वनिर्धारित कूटनीति के तहत कांग्रेस ने सरकार बनाने के लिए जनता दल से 25 सांसदों को लेकर अलग हुए गुट के नेता चंद्रशेखर को समर्थन देने की घोषणा कर दी. कांग्रेस समेत कुछ क्षेत्रीय पार्टियों के समर्थन से चंद्रशेखर प्रधानमंत्री बन गए. हालांकि प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देने के बाद भी वीपी के क़दम नहीं रुके. वह पूरे देश में घूम-घूमकर आम जनता के हित के लिए संघर्ष करते रहे. इस दौरान जनता दल कई बार टूटा और टूटता ही रहा. धीरे- धीरे दलगत राजनीति से वीपी का मोहभंग होता गया और जुलाई 1993 में उन्होंने जनता दल संसदीय दल के नेता पद से त्यागपत्र दे दिया. इसके कुछ महीने बाद ही उन्होंने लोकसभा की सदस्यता भी छोड़ दी. दलगत राजनीति से बाहर आए तो जन चेतना मंच से जनसंघर्ष की शुरुआत की. दिल्ली की 30 हज़ार आबादी वाली वजीरपुर झुग्गी बस्ती को उजाड़ने के लिए सरकार ने बुलडोज़र चलाने की कोशिश की तो वह यह कहते हुए बुलडोज़र के सामने खड़े हो गए कि अगर सरकार सभी अनाधिकृत फार्म हाउसों को भी ढहा दे तो हम इन झुग्गी बस्तियों को उजाड़ने से नहीं रोकेंगे. बाध्य होकर सरकार को अपना निर्णय वापस लेना पड़ा. इस प्रकार झुग्गी झोपड़ी वालों की समस्या को वीपी ने एक राष्ट्रीय परिघटना बना दिया. लेकिन तब तक वीपी गुर्दे और कैंसर जैसी कई लाइलाज बीमारियों से घिर गए थे. धीरे-धीरे वीपी का स्वास्थ्य गिरता गया, पर ज़िंदगी ने हार नहीं मानी. शैय्या पर कविताएं लिखते रहे, चित्र बनाते रहे. मौत के नीम अंधेरे में संबंधों, सरोकारों और मुसीबतों पर कविताएं लिखीं. वीपी का जाना हुआ बिल्कुल चुपचाप. 26-27 नवंबर 2008 को पूरा देश मुंबई आतंकी हमले से सहमा था. डॉक्टर दोपहर में रूटीन चेकअप में आए. उन्हें देखते ही वीपी बोल पड़े-डॉक्टर मुझे आज़ाद कर दो. सचमुच पांच मिनट बाद यानी एक बजकर 55 मिनट पर उनकी धड़कन ठहर गई. आज़ाद हो गए. ज़िंदगी को सलाम कर चले गए. परीक्षित का अंत हो गया.

इस प्रकार वीपी जब से राजनीति में आए, केंद्र में रहे. कांग्रेस की राजनीति में तो एक विश्वासपात्र की तरह रहे ही, उनके चरित्र की छाप बाहर भी फैलती गई. जब भ्रष्टाचार के मुद्दे का शंखनाद किया तो जन-लहर के प्रणेता बन गए. उनका नक्षत्रीय उत्थान हुआ. इसके पहले भ्रष्टाचार, महंगाई और बेरोज़गारी का मुद्दा जयप्रकाश की संपूर्ण क्रांति का कारण बना, जिस पर संपूर्ण भारत आपातकाल की स्मृतियों से एकजुट हुआ. वीपी का मुद्दा भी भ्रष्टाचार था और संस्थागत स्वरूपों का क्षरण. जयप्रकाश की क्रांतिकारी पहल में बहुत से युवा नेता शामिल हुए, पर वे क्रांति के आदर्शों पर क़ायम नहीं रहकर, सत्ताकामिता के शिकार हो गए. वीपी के विद्रोही जमात में उस समय की विपक्षी राजनीति और असंतुष्ट नेता थे जो कांग्रेसी हाईकमानी कुचक्रों में मुख्यधारा से छिटकते चले गए थे. इस मायने में वीपी की पहल किसी आगत सामाजिक जीवन को इमर्ज कराने वाली क्रांति नहीं थी- मूल्यों का प्रतिरोपण थी, जिसने स्थापित सत्ता का प्रतिरोध कर जनमानस को आंदोलित किया. उसका कोई नाभिकीय केंद्र नहीं था. वीपी इस बात को समझते थे कि केवल भ्रष्ट सत्ता की जगह एक जन-परवाह की सत्ता ही जनता का तात्कालिक हल थी. इसी बिना पर उन्होंने युवा वर्ग को ही नहीं, संपूर्ण जनता को गोलबंद किया. ऐसी जन लहर कभी भारतीय राजनीति में नहीं आई थी, जब मुद्दा और व्यक्तित्व दोनों जनता की नज़र में प्रधान होकर भविष्य का सपना बन जाए. व्यापक लोकतंत्रीय जनहित में इस सपने को भुनाना नहीं, उतारना ही वीपी की असली छाप को समझने का सबब है.

अशोक कुमार सिन्हा
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कश्मीर पर अमेरिका का सुझाव पागलपन है

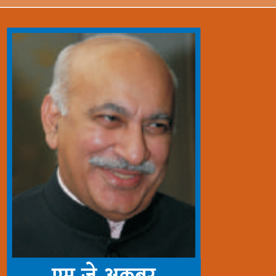
एम जे अकबर

आप अगर आर्सेनिक बेचना चाहते हैं, तो इसका सबसे आसान और उदार तरीक़ा इसे चीनी से लिपटे हुए दवा की तरह बताना होगा. कश्मीर की जनता के घावों पर मरहम लगाने के लिए सुझाई गई अंतरिम राहत में भी कुछ ख़ास नया नहीं है. नियंत्रण रेखा के दोनों ओर असैन्यीकरण की बात भी नई नहीं है. अनूठी बात तो यह है कि वाशिंगटन के द्वारा पाक समर्थित इस अभियान का जबर्दस्त समर्थन किया जा रहा है.

बात यहीं ख़त्म नहीं होती. एक कूटनीतिज्ञ के लिए जो बात असामान्य मानी जाएगी और जो तटस्थता को प्रभावित कर सकती है, ऐसी ही उलटबांसी में विलियम बर्न्स (अमेरिका के राजनीतिक मामलों के उप मंत्री) ने दिल्ली को एक ऐसा संदेश देने की जगह के रूप में चुना, जिससे उनके मेजबान चिंतित होते. बर्न्स ने कहा कि कश्मीर के समाधान के लिए सबसे ज़रूरी है कि वहां की जनता को विश्वास में लिया जाए. इससे ज़ाहिर तौर पर इस्लामाबाद को दिली ख़ुशी हुई होगी.

> बात यहीं ख़त्म नहीं होती. एक कूटनीतिज्ञ के लिए जो बात असामान्य मानी जाएगी और जो तटस्थता को प्रभावित कर सकती है, ऐसी ही उलटबांसी में विलियम बर्न्स (अमेरिका के राजनीतिक मामलों के उप मंत्री) ने दिल्ली को एक ऐसा संदेश देने की जगह के रूप में चुना, जिससे उनके मेजबान चिंतित होते. बर्न्स ने कहा कि कश्मीर के समाधान के लिए सबसे ज़रूरी है कि वहां की जनता को विश्वास में लिया जाए.

असैन्यीकरण की बात काफी तार्किक और मीठी लगती है. यह ज़ाहिर तौर पर सेना को कम करने का एक रास्ता भी है. ओबामा प्रशासन इस समानांतर फ़ायदे की संभावना से बेहद ख़ुश है. इससे तालिबान के ख़िलाफ़ युद्ध में अधिक पाक सैनिकों की भागीदारी निश्चित हो सकेगी. पाकिस्तान ने भारतीय सीमा से कुछ सैन्य ब्रिगेडों को तो हटाया है, लेकिन नियंत्रण रेखा पर वही स्थिति है.

अपने स्वार्थ की वजह से वाशिंगटन ने इस तथाकथित तार्किक संगठन की भूल की तरफ़ से आंखें मूंद ली हैं. कश्मीर को लेकर हुए तीन बड़े युद्धों–1947, 1965 और कारगिल–में पाकिस्तान ने द्विस्तरीय रणनीति अपनाई. एक छद्म सेना का इस्तेमाल पहली पांत के रूप में किया गया. पाकिस्तान इनके लिए इस्तेमाल करने वाला शब्द हमेशा एक ही रखता है. वे स्वतंत्रता सेनानी के दिखावे में आते हैं. भारत ने 1947 और 1965 में उनके लिए छापामार शब्द का इस्तेमाल किया और अब उनको आतंकी कहता है. यह छद्म सेना कश्मीर के अलावा भी सक्रिय है, इसका पता इसी से चलता है कि मुंबई के आतंकी हमले में पाकिस्तान का उपयोग साबित हो चुका है.

असैनिक क्षेत्र पाकिस्तान की सुरक्षा को तय करने के साथ ही भारतीय प्रतिरक्षा को कमज़ोर करेंगे. इसकी वजह यह है कि ऐसा कोई संकेत नहीं दिया गया है कि आतंकी सेना को भी शस्त्रहीन किया जाएगा. तो क्या भारतीय सेना को कश्मीर घाटी को केवल संगठित, बेहद प्रशिक्षित और धन से लैस आतंकी संगठनों की दया पर छोड़ देना चाहिए? भारत के पास ऐसी कोई छद्म सेना नहीं है, क्योंकि यह यथास्थिति को बनाए रखना चाहता है. यह किसी भी पड़ोसी के इलाक़े पर कोई दावा नहीं करता.

अगर अमेरिका भारत में असैनिक क्षेत्र चाहता है, तो उसे पहले पाकिस्तान में ग़ैर–आतंकी क्षेत्र विकसित करना होगा. भारत और पाकिस्तान के पास आतंक की साझा समस्या हो सकती है, लेकिन उनके पास साझा तौर पर आतंकी नहीं हैं. जिन आतंकियों ने भारत में पहले भी आतंक मचाया है और जो आगे भी इसकी योजना बना रहे हैं, वे लाहौर, मुल्तान और कराची के अपने स्वर्ग में सुरक्षित हैं. पाकिस्तान का आतंकवाद को लेकर दोहरा रवैया जमात–उत–दावा के अमीर हफीज़ मोहम्मद सईद की रिहाई से भी साफ हो गया. उसे छह जून को नज़रबंद किया गया था और उसके बाद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप के बाद ही उसे कम कठोर क़ैद में भेजा गया. पाक सरकार का दोहरापन सईद के ख़िलाफ़ बिल्कुल कमज़ोर मामला बनाने से बिल्कुल स्पष्ट हो गया. लाहौर हाईकोर्ट ने–जिसने सईद की रिहाई का आदेश दिया था–ने पाया कि पाकिस्तान ने तो अल–क़ायदा को भी आतंकी संगठनों की सूची में नहीं डाला है.

इस्लामाबाद ने भले ही सीमांत इलाकों में सक्रिय आतंकियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की हो, लेकिन यह उन आतंकियों के साथ अब भी ढिलाई बरतता है, जो भारत के लिए ख़तरा हैं.

इस्लामाबाद का महत्व ओबामा प्रशासन की नज़रों में जायज कारणों से बढ़ा है. उसने भले ही उच्च तकनीकी नौकरियों को मुलायम ताक़त भारत में भेज दिया हो, लेकिन उसने पूरे स्तर पर अफ़–पाक युद्ध को पाकिस्तान को आउटसोर्स कर दिया है.

भारत के पास कॉरपोरेट संतुलन और मध्यवर्गीय नौकरियों में इज़ाफ़े को लेकर ख़ुश होने की वजह है. पाकिस्तान को यह सहायता अरबों डॉलर के रूप में दी जाती है (जिसका कम से कम पांच अरब डॉलर तो दूसरी चीज़ों पर ख़र्च कर दिया गया है). अबतक पारंपरिक हथियारों की ख़रीद में ही इसका इस्तेमाल हुआ है, जिसका इस्तेमाल ज़ाहिर तौर पर भारत के ही विरुद्ध होगा. इसके साथ ही अनुदान और ऋण की तो बात ही जानें दें. पाकिस्तान मानता है कि यह धन भी अपर्याप्त है. वह राजनीतिक तौर पर भी बोनस चाहता है. पाकिस्तान अमेरिका के साथ परमाणु सहयोग चाहता है, वह भी ऊर्जा या अपनी सैन्य आकांक्षाओं के लिए नहीं, बल्कि एक परमाणुशक्ति संपन्न देश के तौर पर ख़ुद को वैधता दिलाने के लिए. इस्लामाबाद कश्मीर के मसले पर भी कुछ ऐसा समाधान चाहता है, जिसे वह अपने यहां जीत के तौर पर प्रचारित कर सके.

पूर्व राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ भले ही फ़िलहाल परिदृश्य से ग़ायब हों, लेकिन उनके विचार अब भी काम कर रहे हैं. उन्होंने जर्मनी के अख़बार डेर *स्पीगल* को दिए गए अपने इंटरव्यू में बताया है कि भारत और पाक उनके कार्यकाल के दौरान समझौते के बेहद क़रीब पहुंच गए थे. इस समझौते में विवादित इलाक़े का असैन्यीकरण, स्वशासन और परस्पर सहयोग महत्वपूर्ण बिंदु थे. दिल्ली ने नियंत्रण रेखा को औपचारिक सीमा में बदलने की बात की, लेकिन यह विचार कि दोनों देश समझौते के क़रीब पहुंच चुके थे, ने ही वाशिंगटन को यह मानने के पर्याप्त कारण दिए कि वह दिल्ली पर दबाव डालकर कुछ समझौता करा सकता है. शायद नियंत्रण रेखा को दूसरे ट्रांज़िट रूट खोलकर अप्रासंगिक बनाना भी इसी में शामिल था.

इस खुली या लचीली सीमा के सिद्धांत में कई झोल हैं. आप आख़िर यह कैसे कर सकते हैं, जब तक दोनों ही पक्ष इसे सीमा नहीं स्वीकार करें. इसके साथ ही परस्पर निगरानी जैसे मुहावरों का अर्थ क्या हुआ? दोनों ही हालात में कश्मीर में भारतीय संप्रभुता पर ख़तरा मौजूद हो जाएगा.

मुशर्रफ–जो लंदन के अपने फ्लैट में ब्रिज खेलकर ऊबे से दिखते हैं–कहते हैं कि वह एक शांति समझौता कराने के लिए अपना सहयोग दे सकते हैं. हालांकि, कश्मीर में शांति की खोज शायद कारगिल में युद्ध शुरू करने से भी कठिन होगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मीडिया और क़ानून

रवि किशोर

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में मौलिक अधिकारों के तहत नागरिकों को बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी का प्रावधान किया गया है. बोलने की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक सरकार के लिए कवच है. लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सही तरीक़े से लागू करने के लिए इस तरह की स्वतंत्रता बेहद ज़रूरी है. यह सिर्फ़ नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को ही नहीं, बल्कि देश की एकता और एकरूपता को भी बढ़ावा देता है. हालांकि संविधान के अनुच्छेद 19(1) में जो स्वतंत्रता दी गई है, वह पूर्ण या काफी नहीं है. ये सभी अधिकार संसद या राज्य विधानसभा के बनाए क़ानूनों के तहत नियंत्रित, नियमित या कम करने के लिए जवाबदेह हैं. अनुच्छेद 19 के नियम (2) से (6) में उन आधारों और लक्ष्यों की व्याख्या है जिसके आधार पर इन अधिकारों को नियंत्रित किया जा सकता है.

लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी बहुत ज़रूरी है और उसे आज़ादी की पहली शर्त माना जाता है. बोलने की स्वतंत्रता सभी अधिकारों की जननी है. सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक मुद्दों पर लोगों की राय बनाने के लिए बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी महत्वपूर्ण है. मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ के मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी के महत्व पर ज़ोर देते हुए व्यवस्था दी थी कि–लोकतंत्र मुख्य रूप से स्वतंत्र बातचीत और बहस पर आधारित है. लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देश में सरकार की कार्रवाई के उपचार के लिए यही एक उचित व्यवस्था है. अगर लोकतंत्र का मतलब लोगों का, लोगों के द्वारा शासन है, तो यह स्पष्ट है कि हर नागरिक को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार होना ज़रूरी है और अपनी इच्छा से चुनने के बौद्धिक अधिकार के लिए सार्वजनिक मुद्दों पर स्वतंत्र विचार, चर्चा और बहस बेहद ज़रूरी है. अनुच्छेद 19 (1) के तहत मिली अभिव्यक्ति की आज़ादी में कोई भी नागरिक किसी भी माध्यम के द्वारा, किसी भी मुद्दे पर अपनी राय और विचार दे सकता है. इन माध्यमों में व्यक्तिगत, लेखन, छपाई, चित्र, सिनेमा इत्यादि शामिल हैं. जिसमें संचार की आज़ादी और अपनी राय को सार्वजनिक तौर पर रखने और उसे प्रचारित करने का अधिकार भी शामिल है.

भारत में प्रेस की स्वतंत्रता को अनुच्छेद 19 के तहत मिली बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी से ही लिया गया है. प्रेस की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं है. *सकाल* अख़बार बनाम भारतीय संघ के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि प्रेस की स्वतंत्रता की उत्पत्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से ही हुई है. सुप्रीम कोर्ट ने कई मामलों में लोकतांत्रिक समाज में प्रेस की स्वतंत्रता को बनाए रखने पर ज़ोर दिया है. प्रेस तथ्यों और विचारों को प्रकाशित कर लोगों की रुचि बढ़ाकर एक ऐसी तार्किक विचारधारा उत्पन्न करता है जिसके बिना

कोई भी निर्वाचक मंडल सही फ़ैसला नहीं दे सकता.

प्रेस की स्वतंत्रता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है और लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बहुत ही ज़रूरी है. भारतीय संविधान में यह स्वतंत्रता मौलिक अधिकार के रूप में दी गई है. प्रेस व्यक्तिगत अधिकारों को सम्मान देने और वैधानिक सिद्धांतों और क़ानूनों के अंतर्गत काम करने के लिए बाध्य है. ये सिद्धांत और क़ानून न्यूनतम मानकों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिक महत्वपूर्ण सिद्धांतों में दखल नहीं देते हैं. मीडिया लोकतांत्रिक व्यवस्था का चौथा स्तंभ है. बाक़ी तीनों स्तंभों में, जहां विधायिका समाज के लिए क़ानून बनाती है, वहीं कार्यपालिका उसे लागू करने के लिए क़दम उठाती है, तीसरा महत्वपूर्ण स्तंभ न्यायपालिका है जो यह सुनिश्चित करती है कि सभी कार्रवाइयां और फ़ैसले वैधानिक हों और उनका सही तरीक़े से पालन किया जाए. चौथे स्तंभ–यानी प्रेस को इन क़ानूनों और संवैधानिक प्रावधानों के अंदर रहकर सार्वजनिक और राष्ट्रीय हित में काम करना होता है. इससे यही संकेत मिलता है कि कोई भी क़ानून से ऊपर नहीं है. जब भारत के संविधान में नागरिकों के लिए संविधान में बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया गया, तब यह भी सुनिश्चित किया गया कि यह स्वतंत्रता पूर्ण नहीं थी और कोई भी अभिव्यक्ति–चाहे वह शाब्दिक हो या दृश्य माध्यम से–वह विधायिका द्वारा बनाए गए और कार्यपालिका के द्वारा लागू किए गए संवैधानिक नियमों का उल्लंघन न करती हो. अगर प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर आकर काम करता है तो न्यायपालिका के पास उस पर मौलिक अधिकार उल्लंघन के तहत कार्रवाई का हक़ है.

प्रिंट, रेडियो और टीवी एक स्वस्थ लोकतंत्र विकसित करने के लिए लोगों को जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं. अनुच्छेद 19(2) के तहत रखे गए प्रावधानों में एक नागरिक को अपने विचार रखने, प्रकाशित करने और प्रचारित करने का अधिकार है, और इस अधिकार पर कोई भी रोक अनुच्छेद 19(1) के तहत ग़लत होगी. सुप्रीम कोर्ट ने एक अहम मामले में दूरदर्शन को फटकार लगाई, जिसमें दूरदर्शन ने भोपाल कांड पर बने एक वृत्तचित्र (डाक्यूमेंटरी) को दिखाने से इंकार कर दिया था. दूरदर्शन के मुताबिक उस मामले की अब कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई थी. हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने इस दलील को ख़ारिज़ कर दिया. पर इस मामले में न्यायालय ने कहा कि राज्य के प्रयासों को अयोग्यता और अधिकारियों के रवैए का चित्रण किसी राजनैतिक पार्टी पर हमला नहीं माना जा सकता, जब की गई आलोचना सही और स्वस्थ हो.

अभी हाल के दिनों में स्टिंग ऑपरेशन को लेकर बहुत सवाल उठे हैं. स्टिंग ऑपरेशन धोखे से किसी अपराधी को पकड़ने का तरीक़ा है. इसके लिए झूठे विश्वास और बड़ी चतुराई पर आधारित योजना बनाई जाती है, जिस पर बहुत ही सावधानी और सतर्कता के साथ अमल किया जाता है. स्टिंग शब्द की उत्पत्ति अमेरिका से हुई है. इसे वहां की पुलिस द्वारा अपराधियों को पकड़ने के लिए गुप्त योजना के अर्थ में प्रयोग किया जाता था. दूसरे शब्दों में इसे खोजी और गुप्त पत्रकारिता भी कह सकते हैं. स्टिंग ऑपरेशन असल में सूचना एकत्र करने का एक ऐसा तरीक़ा है जिसमें उस सूचना को प्राप्त किया जाता है जिसे हासिल करना दूसरी तरह से बहुत ही कठिन हो.

अगर देखा जाए तो बहुत घटनाओं में स्टिंग ऑपरेशन सरकार के काम करने के तरीक़ों का जायज़ा लेने के लिए किया जाता है या फिर किसी भी ऐसे व्यक्ति के ख़िलाफ़ जिसका आचरण व्यवस्था के विरुद्ध हो. भारत में इस तरह के ऑपरेशन को नियंत्रित करने के लिए कोई विशेष क़ानून नहीं बनाया गया है और न ही इसके मार्गदर्शन के लिए कोई न्यायिक घोषणा ही है. लेकिन कोई भी व्यक्ति विभिन्न क़ानूनों के तहत अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए न्यायालय जा सकता है. 1996 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए एक फ़ैसले के अनुसार वायरटैप का प्रयोग किसी की निजी ज़िंदगी में दखल देना है. कोर्ट ने सरकार द्वारा वायरटैपिंग के लिए दिशा–निर्देश जारी किए. इसमें यह बताया गया कि किन परिस्थितियों में और कौन फोन टैप कर सकता है. फोन टैप करने का आदेश सिर्फ़ गृह सचिव और राज्य में उसके समकक्ष कोई अधिकारी ही दे सकता है. इसके अलावा सरकार को यह भी दिखाना होगा कि जो सूचना प्राप्त की जा रही है, उसे किसी दूसरे ज़रिए से प्राप्त नहीं किया जा सकता है.

हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फ़ैसले में कहा कि पत्रकार स्टिंग ऑपरेशन के ज़रिए समाज में भ्रष्टाचार को उजागर करता है. केंद्रीय मंत्री और बीजेपी नेता दिलीप सिंह जूदेव के ख़िलाफ़ हुए एक स्टिंग ऑपरेशन से संबंधित मामले में सुनवाई के दौरान जस्टिस मार्कंडेय काटजू ने कहा कि वह स्टिंग ऑपरेशन से पूर्णत: सहमत हैं. अधिक से अधिक स्टिंग ऑपरेशन होने चाहिए, जिससे भ्रष्ट लोगों को सामने लाया जा सके. साथ ही उन्होंने कहा कि जो स्टिंग ऑपरेशन कर रहा है उसके साथ अपराधी जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए. उसका उद्देश्य सिर्फ़ समाज में फैले भ्रष्टाचार को सामने लाना होता है. उन्होंने पूछा, वह अपराधी जैसा कैसे हो सकता है. काटजू के विचार भारत के मुख्य न्यायाधीश के जी बालकृष्णन की अध्यक्षता वाली एक दूसरी खंडपीठ के उलट हैं, जिसने एक चैनल के पत्रकार–जिसने गुजरात के एक अधीनस्थ कोर्ट में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया–से बिना शर्त क्षमा मांगने के लिए कहा. 2004 में उस रिपोर्टर ने चार बड़ी हस्तियों–जिनमें पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम और भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश शामिल थे–के ख़िलाफ़ अहमदाबाद के कोर्ट से ज़मानती वारंट जारी करा लिए थे. हालांकि जूदेव केस की सुनवाई कर रही पीठ के प्रमुख अलतमस कबीर ने कहा कि स्टिंग ऑपरेशन के दूसरे पहलू भी हैं, जिसका सबूत दिल्ली में एक शिक्षिका उमा खुराना के मामले में दिखा.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

आदरणीय संपादक महोदय,

पिछले कई अंकों से आपने कला के पन्ने पर कई साहित्यकारों के निधन और जन्म दिवस पर पाठकों तक विशेष सामग्री पहुंचाई है. नए अंक में भी सुपसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर के निधन पर सारगर्भित आलेख पढ़ने को मिला. इसके लिए धन्यवाद. रंगमंच की दुनिया में हबीब साहब का वाकई बड़ा योगदान रहा है. यह सच है कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और इब्राहीम अलकाजी की अगुआई में सत्तर के दशक में भारतीय रंगमंच पर हावी हो रहे विदेशी संस्कार और अंग्रेजी के सामने उन्होंने खड़े होने का साहस दिखाया था. उनकी महानता यह थी कि थियेटर की पढ़ाई लंदन की रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट्स से करने के बावजूद वह पाश्चात्य शैली और तड़क–भड़क से कोसों दूर रहे. कितनी हैरानी की बात थी. रंगमंच की इस महान विभूति के बारे में इतने अच्छे आलेख उपलब्ध कराने के लिए आभारी रहूंगा. इससे पहले साहित्यकार कमला सुरैया के निधन पर भी शोधपूर्ण आलेख पढ़ने को मिला था.

आपका
रणजीत
पांडव नगर

जब तोप मुक़ाबिल हो

इस्तीफे भाजपा में चल रहे नेतृत्व संघर्ष का आईना हैं

> अब भाजपा के भीतर जो चल रहा है वह खुलेआम बड़े पर्दे पर चलने वाले सिनेमा की तरह लोगों के सामने दिखाई दे रहा है. पहली बार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की ज़ुबान नहीं खुल रही है. अनुशासित पार्टी का भ्रम टूट रहा है. सर संघचालक मोहन भागवत अपने दो सहयोगियों को आडवाणी से बात करने भेजते हैं पर दोनों ही आडवाणी को मोहन भागवत की इच्छा नहीं बताते. आडवाणी ख़ामोश रह उन्हें चाय पिला वापस भेज देते हैं. मोहन भागवत भागलपुर और पटना में मिलने वालों से साफ कहते हैं कि भाजपा में जो हो रहा है अच्छा नहीं हो रहा है, लेकिन वह कुछ करने की स्थिति में नहीं हैं.

एक ऐसी पार्टी जिसके दो सांसद थे, दो दशकों के भीतर उसका प्रधानमंत्री बन गया. लोगों ने कहा कि अनुशासन की वजह से ऐसा हुआ, कुछ ने कहा कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की वजह से भाजपा सत्ता में आई. स्वयं भाजपा ने कहा कि यह हिंदू पुनर्जागरण है, जो कि पूरा नहीं हुआ है. अगली बार के चुनाव में तीन सौ से ज़्यादा सांसद जिताएंगे और तब राम मंदिर बनाएंगे. उस चुनाव में, जिसमें तीन सौ से ज़्यादा सांसद जीतने का दावा किया गया था, इंडिया शाइनिंग का नारा दिया गया. नारा इतना चमका कि अटल जी के नेतृत्व में भाजपा की चमक खो गई. और तब आए आडवाणी जी. पिछले दो साल से भारत में पहली बार प्रतीक्षारत प्रधानमंत्री का मुहावरा भाजपा ने गढ़ा, पैसे के अत्यंत प्रभाव की वजह से हर जगह, सारी दुनिया में आडवाणी जी भारत के भावी प्रधानमंत्री घोषित कर दिए गए. सारी दुनिया से बड़े पैसे वालों ने भाजपा का समर्थन किया, लेकिन भाजपा ने सब को याद रखा, आम जनता को भूल गई. उसी आम जनता को, जिसके वोट से उसे सत्ता में आना था.

अब भाजपा के भीतर जो चल रहा है वह खुलेआम बड़े पर्दे पर चलने वाले सिनेमा की तरह लोगों के सामने दिखाई दे रहा है. पहली बार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की ज़ुबान नहीं खुल रही है. अनुशासित पार्टी का भ्रम टूट रहा है. सर संघचालक मोहन भागवत अपने दो सहयोगियों को आडवाणी से बात करने भेजते हैं पर दोनों ही आडवाणी को मोहन भागवत की इच्छा नहीं बताते. आडवाणी ख़ामोश रह उन्हें चाय पिला वापस भेज देते हैं. मोहन भागवत भागलपुर और पटना में मिलने वालों से साफ कहते हैं कि भाजपा में जो हो रहा है अच्छा नहीं हो रहा है, लेकिन वह कुछ करने की स्थिति में नहीं हैं. आडवाणी के लोग संघ को उसकी हैसियत बताना चाहते हैं तथा संघ से कह रहे हैं कि वह भाजपा के काम में हस्तक्षेप न करे. संगठन मंत्रियों को अब दरकिनार करने का फ़ैसला आडवाणी की टीम ने कर लिया है.

जसवंत सिंह का पत्र, फिर यशवंत सिन्हा और अरुण जेटली के इस्तीफे. ये घटनाएं भाजपा के भीतर चल रहे नेतृत्व संघर्ष का खुला आईना हैं. आडवाणी जी उनके जाल में फंस चुके हैं, जिन्होंने भाजपा की कमर तोड़ी है. उन्हें लगता है कि जब तक आडवाणी जी हैं तब तक भाजपा के अंदर की कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाया जा सकता है, और वे भी बचे रह सकते हैं. उन्हें इस बात का अहसास है कि इस समय संघ का नेतृत्व वरिष्ठता में आडवाणी से काफी छोटा है, इसीलिए वह आडवाणी पर कोई दबाव नहीं डाल सकता. यह लड़ाई अभी और बढ़नी चाहिए, जब बढ़ेगी तब हो सकता है भाजपा को समझ में आए कि उसके सिद्धांत, उसके व्यवहार, उसकी सोच और उसके तरीक़े में गड़बड़ कहां है. समय आ गया है, जब भाजपा सोचे कि क्या वह देश के हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करती है ? पिछले चार चुनावों ने भाजपा को साफ–साफ बताया है कि देश के हिंदू सांप्रदायिक या अतिवादी सोच के नहीं हैं. साथ ही भाजपा को यह भी समझ में आना चाहिए कि देश के मुसलमानों से बिना संवाद बनाए, दिल्ली की तरफ़ चलना नामुमकिन है. भाजपा के पास देश की समस्याओं के हल के लिए कोई आर्थिक योजना है भी या नहीं? अब टीवी और अख़बारों में छपे विज्ञापन मतदाताओं को नहीं लुभाते, उन्हें

> जसवंत सिंह का पत्र, फिर यशवंत सिन्हा और अरुण जेटली के इस्तीफे . ये घटनाएं भाजपा के भीतर चल रहे नेतृत्व संघर्ष का खुला आईना हैं. आडवाणी जी उनके जाल में फंस चुके हैं, जिन्होंने भाजपा की कमर तोड़ी है. उन्हें लगता है कि जब तक आडवाणी जी हैं तब तक भाजपा के अंदर की कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाया जा सकता है, और वे भी बचे रह सकते हैं.

काम चाहिए. इसका उदाहरण दिल्ली है, जहां भाजपा ने पहले विधानसभा में शिकस्त खाई और बाद में लोकसभा चुनावों में. लेकिन चिंता भाजपा को होनी चाहिए, जो कि दिखाई नहीं देती. हमारी चिंता का विषय कांग्रेस है, जिसे देश में शासन करने का जनादेश मिला है. भाजपा के मुक़ाबले ज़्यादा सीटें जीतकर उसका प्रधानमंत्री अभी तक तो जगा दिखाई दे रहा है. लेकिन यह राजनीति है, जिसमें कब कौन सो जाए पता ही नहीं चलता. भाजपा की यह हालत कांग्रेस के लिए ख़ुशी का कारण बन सकती है, और यही डर है कि कांग्रेस कहीं ख़ुशी में डूब न जाए. लोगों के हाथ में सरकार बनाए रखने का या नहीं बनाए रखने का मंत्र आ गया है. यह अहसास जनता के मन में ताक़तवर होने की भावना बढ़ाता है. यह भावना ही देश में लोगों के इकट्ठा होने का आधार बन रही है. देश में जगह–जगह ऐसे सम्मेलन होने लगे हैं जिनमें वे लोग हिस्सा ले रहे हैं जो जनता का मानसिक प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं. वे सरकार के सौ दिन के एजेंडे पर बहस कर रहे हैं और ऐसी कमेटियों ब्लॉक स्तर पर बनाने की बात कर रहे हैं जो सौ दिन के एजेंडे की प्रगति पर नज़र रखेगी. यह ज़रूरी है, क्योंकि देश का विपक्ष भी सत्ता पक्ष की कड़ी का एक हिस्सा बनता जा रहा है. इसीलिए अगर किसी को अपने हित के बारे में सोचना है तो देश में रहने वालों को सोचना है. उनके लिए कोई राजनैतिक पार्टी सोचेगी, इस भ्रम को अब टूट जाना चाहिए. यहीं कांग्रेस के लिए चिंता की बात पैदा हो रही है. जनता की जो कमेटियां सौ दिन के एजेंडे पर निगरानी के लिए बन रही हैं, क्या उन्हें मनमोहन सरकार अपने लिए जानकारी का एक स्रोत मानेगी या उन्हें अपने काम में रुकावट मान उनका विरोध करेगी? यह सवाल अगले सत्तर दिनों तक सवाल ही बना रहेगा, पर सत्तर दिन के बाद जब इसका उत्तर मिलेगा, तो वह तय करेगा कि देश के राजनैतिक सिस्टम के साथ जनता का रिश्ता क्या रहेगा.

अक्सर इतिहास में होता है कि जनता के समर्थन से बनी सरकार जनता के ही सामने खड़ी हो जाती है. क्या इस बार ऐसा होगा, इस सवाल का जवाब तलाशना चाहिए.

पहले सौ दिनों में क्या देश के अल्पसंख्यक, नौजवान, दलित को ध्यान में रख कोई सार्थक रास्ता दिखाई देता है या नहीं, यह पहली कसौटी होगी. कांग्रेस दिल्ली में आम लोगों के लिए जैसा रोडमैप बनाएगी, वह तब उसकी कसौटी बनेगा जब महाराष्ट्र, हरियाणा, बिहार, झारखंड और बंगाल में विधानसभा चुनाव होंगे. कांग्रेस के लिए समर्थक वर्ग ग़रीब में ही पहले था, अब भी है. ग़रीब ने इस बार न भाजपा की बात पर और न वामपंथ की बात पर ध्यान दिया, लेकिन कांग्रेस अगर माने कि यह हमेशा के लिए हुआ है तो यह ग़लत होगा. उसका सौ दिन के एजेंडे पर अमल और उसके नतीजे उसे आने वाले विधानसभा चुनावों में जिताएंगे या हराएंगे. महाराष्ट्र और बिहार उनके लिए बड़ी चुनौती है, तो भाजपा के लिए भी बड़ी चुनौती है. देखना मज़ेदार होगा कि किसने सीखा और किसने नहीं.

संपादक
editor.chauthiduniya@gmail.com

अपने पैरों पर खड़ा होना

किसी भी देश के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना आख़िर कितना मुश्किल होता है. भारत, चीन और ईरान के रूप में बिल्कुल हमारे पड़ोसी देशों के उदाहरण सामने हैं. आर्थिक ताक़त ने इन देशों को वह साहस और आत्मविश्वास दिया है, जिसके बूते वे अपने राष्ट्रीय हितों के सवाल पर एक कठोर रुख़ अख्तियार कर लेते हैं. पाकिस्तान में इसका ठीक उल्टा होता है.

हमारा इतिहास तानाशाहों से शासित होने का रहा है. इनको सहायता अमेरिका की तरफ़ से मिली है. यह काफी हद तक दुर्भाग्यपूर्ण है कि अमेरिकी सरकारें हमारे सैन्य नेताओं को तो आर्थिक मदद देती हैं, लेकिन उभरते हुए लोकतांत्रिक नेताओं को मदद देने में हिचकती है. इतिहास हमें बताता है कि हमारी सेना के ताक़तवर लोग अक्सर ही बाहरी दबाव के आगे झुकते रहे हैं.

ऐसा आख़िर क्यों होता है कि हम पाकिस्तानी हमेशा ही विदेशी सहायता को अपनी हर बीमारी के इलाज के तौर पर देखते हैं. इस सप्ताह अमेरिकी सांसद एक बार फिर से पाकिस्तान को दी जाने वाली सहायता को मंजूरी देंगे. क्या हमें सचमुच इस पैकेज की ज़रूरत है? यह अगर मान भी लिया जाए कि हम एक बार फिर से आर्थिक दुष्चक्र में फंस चुके हैं, तो क्या इससे उबरने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है? साथ ही हमें इसके साथ मिली पाबंदियों और शर्तों को भी स्वीकार करना होगा.

> पाकिस्तान एक दुःस्वप्न साबित होता है, जब हम शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी और सफाई जैसे मूलभूत मसलों की चर्चा करते हैं. दशकों से अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं, संयुक्त राष्ट्र और मददगार सरकारें औसत पाकिस्तानी नागरिक की जीवनशैली को ऊंचा करने की कोशिश कर रही हैं. हालांकि कुछ अपवादों को छोड़कर अंतर कम ही रहा है. इसमें अधिक दोष हम लोगों का ही है. हमारी सरकार, हमारे भ्रष्ट नेता और नौकरशाह ही इसके ज़िम्मेदार हैं.

हमें कहा गया है कि यह पैकेज अलग है. पहली बात तो यह एक ऐसी सरकार को दिया जा रहा है, जो लोकशाही में यक़ीन रखती है. दूसरे, इस बार ज़ोर सैन्य सहायता पर न होकर पाकिस्तान को आर्थिक और मानवीय संपदा के विकास के मोर्चे पर सहायता देना है.

पाकिस्तान एक दुःस्वप्न साबित होता है, जब हम शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी और सफाई जैसे मूलभूत मसलों की चर्चा करते हैं. दशकों से अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं, संयुक्त राष्ट्र और मददगार सरकारें औसत पाकिस्तानी नागरिक की जीवनशैली को ऊंचा करने की कोशिश कर रही हैं. हालांकि कुछ अपवादों को छोड़कर अंतर कम ही रहा है. इसमें अधिक दोष हम लोगों का ही है. हमारी सरकार, हमारे भ्रष्ट नेता और नौकरशाह ही इसके ज़िम्मेदार हैं. इस माह दिए गए पैकेज में हमारी सरकार यह दिखाने में ही ख़ुश है कि यह आर्थिक आधार को ठोस बनाएगा. कुछ एक ठंडी सांस भर कर यह भी कहते हैं कि पाकिस्तान दुनिया के उन चुनिंदा देशों में शामिल है जो अधिक क़र्ज़ लेने पर भी उत्सव बनाता है.

कुछ ऐसे भी हैं जिनका मानना है कि अमेरिकी मदद बिना किसी मूल्य के नहीं आएगी. अगर पीछे के उदाहरणों को देखें, तो यह सच भी लगता है. जब भी हमें नया पैकेज दिया गया है, वही वायदे दुहराए गए हैं. हमारे नेता पैसा नहीं चुराने का वायदा करते हैं और अमेरिकी हमें बीच रास्ते में नहीं छोड़ने का वचन देते हैं. राष्ट्रपति ओबामा के पैकेज में आख़िर ऐसा क्या हैं जिससे पाकिस्तानी सरकार यह सोच रही है कि वह देश के मौजूदा हालात को बदल देगी? पहले से ही अधिकतर पाकिस्तानी सोचते हैं कि स्वात का फौजी हमला अमेरिकियों की शह पर हुआ था. कुछ तो यह भी मानते हैं कि अमेरिकी इसी वजह से हमें पैसा दे रहे हैं. इसमें कुछ तो सच्चाई है ही. राष्ट्रपति ज़रदारी ने कहा है कि उनके पास स्वात और आतंकवाद से प्रभावित दूसरे इलाक़ों में लड़े जा रहे युद्ध के बाद की आर्थिक योजना के लिए पैसे नहीं हैं. हमें बारहां राष्ट्रपति ज़रदारी ने बताया है कि जब तक सैन्य कार्रवाई के बाद आर्थिक सहायता मुहैया नहीं कराई जाती, तब तक आतंक और उग्रवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई अधूरी ही मानी जाएगी.

हमें यह भी बताया गया है कि तालिबान की लोकप्रियता में स्वात और पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत के दूसरे इलाक़ों में बढ़ोतरी की एक वजह वहां की आर्थिक मंदी और बढ़ी हुई बेरोज़गारी थी. इसके साथ ही गोला बारूद के आसानी से मुहैया होने ने भी एक घातक वातावरण बना. सवाल यह उठता है कि क्या तालिबान के जाने और पाकिस्तानी हुकूमत के सख्त रवैये से ही आर्थिक क्रांति आ जाएगी? अगर हमें आर्थिक संभावनाओं के मद्देनज़र पाकिस्तानी सरकार की योग्यता को देखना है तो हम दुर्भाग्य से इसका रिकार्ड बेहद ख़राब पाएंगे. जब भी विदेशी सहायता प्राप्त योजनाओं को लागू करने की बात आती है तो यह बात बेहद स्पष्ट हो जाती है. शायद यही वजह है कि अमेरिकी अब इस्लामाबाद में ख़र्चे और आमदनी का हिसाब रखने के लिए एक कार्यालय बना रहे हैं. लाख टके का सवाल तो यह है कि उन अमेरिकियों पर कौन नज़र रखेगा जो अनुदान आधारित कार्यक्रमों को बर्बाद करने में किसी तरह अपने पाकिस्तानी समतुल्यों से कम नहीं हैं.

यहां फिर सवाल उठता है कि इस सारे घालमेल में अमेरिका और उसके नागरिकों की क्या भूमिका है? इससे भी अहम यह कि अमेरिकियों को हमें मदद क्यों देनी चाहिए, जब वे अपने ही आकलन पर अड़े रहते हैं और स्थानीय सुझावों को दरकिनार कर देते हैं. क्या हमारी कुव्वत है कि हम नकारात्मक जवाब दे सकें?

आख़िर इस पूरे मामले में हम कहां हैं? ईमानदारी से कहें तो यह हमारा झमेला है, हमें ही इसे साफ करना चाहिए था. अपने आंतरिक मामलों में अमेरिकी दखल को बढ़ाकर हम और समस्याओं को न्योता दे रहे हैं. हम केवल समझौते के काग़ज़ों के सहारे ज़िंदा नहीं रह सकते. सबसे बड़ी बात यह कि हमारी समस्याओं का हल हमारे देश के अंदर है, वाशिंगटन के पास नहीं.

अब तक तो लोकतांत्रिक तरीक़े से चुनी इस सरकार ने कई मुद्दों पर हमें निराश ही किया है. इसके खाते में एकमात्र उपल्ब्धि यह है कि शौकत तरीन और उनकी टीम ने हमें उस आर्थिक संकट से उबार लिया जो निकट भविष्य में आने वाला था. बावजूद इसके, हम अब भी गले तक पानी में डूबे हुए हैं. यह बेहद चिंताजनक हालात हैं, जिन पर पूरी दुनिया की नज़र है.

मैं तो यह कहूंगा कि हमारा पहला क़दम ही दिशाहीन है. उन जगहों के बारे में कोई भी योजना नहीं बनाई गई है जहां हमें आगे बढ़ना है. हमारी सरकार रोज़ाना एक योजना बनाती है जबकि जनता बड़ी बात देखना और समझना चाहती है. नागरिक जानना चाहते हैं कि सरकार आख़िर मुद्रास्फीति से निबटने के लिए क्या कर रही है. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य पदार्थों और पेट्रोलियम के दामों में कमी आई है, लेकिन यह हमारे बाज़ारों में दिख नहीं रहा है. कुछ लोग तो इसी अचरज में हैं क्या सरकार उन माफियाओं से निपट पाएगी जो पाकिस्तान में वितरण की श्रृंखला को नियंत्रित करते हैं.

हम यह भी जानना चाहते हैं कि सरकार स्वात के हमले के बाद क्या करने की योजना बना रही है? आने वाले महीनों में सरकार शरणार्थियों की समस्या से किस तरह निपटेगी? शरणार्थियों के पुनर्वास और उस इलाक़े के आर्थिक कल्याण के लिए सरकार के पास क्या योजना है? लोगों को कुछ ऐसा देने की ज़रूरत है, जिससे वे कुछ उम्मीद रख सकें, यह नहीं हो रहा है. सरकार आख़िर आतंक के ख़िलाफ़ लड़ाई के राजनीतिक परिणामों से दो–चार होने के लिए क्या कर रही है?

पाकिस्तानियों के दिल और दिमाग़ को जीतने के लिए हो रही लड़ाई का जीता जाना अभी बाक़ी है. अधिकतर पाकिस्तानी अब भी जनजातीय इलाक़ों में हो रही लड़ाई से सहमत नहीं हैं. सरकार काहे के लिए अब तक अपना मामला साफ तौर पर प्रस्तुत नहीं कर सकी है? आख़िर क्यों मीडिया में इसको लेकर बहस नहीं हो रही है?

आर्थिक मुद्दे पर भी सरकार के पास दृष्टि और योजना का अभाव है. निर्यात के लिए हमारी क्या योजना है? अगले पांच सालों में हम अपने कर के ढांचे को कैसे बढ़ाने वाले हैं? हम अपने निजीकरण के कार्यक्रम में कितनी प्रगति कर रहे हैं? आख़िर हम सरकारी सेवाओं में निजी क्षेत्र की तुलना में अधिक नौकरियां क्यों बांट रहे हैं?

कई बार ऐसा वक़्त आता है जब लोग सरकार को काम करते हुए देखना चाहते हैं, जैसा इसने स्वात में किया भी है–भले ही काफी देर बाद. कोई भी राष्ट्रपति से यह पूछना चाहेगा कि वह क़ानून और व्यवस्था को लेकर क्या कर रहे हैं? इसलिए कि हमारे शहरों में अपराध और हिंसा ख़तरनाक तौर पर बढ़ रहे हैं. लोगों का पुलिस व्यवस्था से यक़ीन उठ गया है और वे हमारी न्यायिक व्यवस्था की गुणवत्ता पर भी सवाल उठा रहे हैं.

राष्ट्रपति के साथ ही हमारे वर्तमान नेतृत्व को भी आम आदमी के दर्द को समझना चाहिए. यह समय विदेश यात्राओं का नहीं है बल्कि देश के लोगों को यह यक़ीन दिलाने का है कि मुल्क तरक़्क़ी के रास्ते पर बढ़ रहा है. इसके लिए राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखना होगा.

इस्लामाबाद से के. सिद्दीकी
feedback.chauthiduniya@gmail.com

एक्टॉपिक गर्भधारण

रीतिका सोनाली

गांवों में गर्भवती महिलाएं आम तौर पर दाइयों पर ही निर्भर रहती हैं. अपने थोड़े-बहुत अनुभव के साथ ये दाइयां गर्भवती महिलाओं को होने वाली परेशानियों में सही-ग़लत इलाज कर देती हैं. ऐसे में गर्भवती महिला की कई गंभीर बीमारियों का पता ही नहीं चल पाता और वे अपने कोख में पल रहे बच्चे के साथ-साथ अपनी जिंदगी भी खो देती हैं. अक्सर गांवों में देखा गया है कि गर्भवती महिलाएं दर्द से तड़पती रहती हैं और उसे गर्भधारण का साधारण दर्द समझकर अनदेखा कर दिया जाता है. घर-परिवार और यहां तक कि पति की अनदेखी में भी कई बार घर-आंगन को महकाने वाली महिला इस दुनिया से विदा ले लेती हैं. चूंकि गर्भधारण में जितना आम पेट दर्द होना है, उससे अधिक आम है उसे नज़रअंदाज़ किया जाना. लेकिन कई बार इस तरह का दर्द सिर्फ़ साधारण दर्द न होकर बड़ी बीमारी या समस्या भी होती है. रॉकलैंड अस्पताल में स्त्री रोग व प्रसूति विभाग की प्रमुख डॉ. आशा शर्मा के मुताबिक, साधारण लगने वाले इस दर्द का कारण दरअसल एक्टॉपिक गर्भधारण होता है. यह ऐसी बीमारी है, जिसके बारे में केवल डॉक्टर ही बता सकते हैं, दाइयां नहीं. यह एक गंभीर बीमारी है, जो गर्भवती महिला की जान भी ले सकती है. साधारण गर्भधारण में पुरुष के शुक्राणु और स्त्री का अंडाणु योनिमार्ग में मिलकर गर्भाशय तक पहुंचते हैं. वहां पहुंचकर ही भ्रूण का विकास होता है. यह सुरक्षित प्रजनन की विधि है, जबकि एक्टॉपिक गर्भधारण में शुक्राणु और अंडाणु गर्भाशय तक पहुंचने से पहले ही परिपक्व होने लगते हैं, जो उनकी उचित जगह नहीं होती है. कई बार नली यानी फैलोपियन ट्यूब में किसी प्रकार का इंफेक्शन हो जाने पर वे गर्भाशय तक नहीं पहुंच पाते. तब भ्रूण का विकास उस नली में ही होने लगता है. इससे रक्त नलिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, जिससे हल्का-हल्का रक्तस्राव शुरू हो जाता है. इसके साथ ही पेट के निचले हिस्से में काफी दर्द होता है. कभी-कभी तो योनि में भी तेज़ दर्द के बाद अत्यधिक रक्तस्राव शुरू हो जाता है. एक्टॉपिक गर्भधारण का उचित इलाज न होने से महिला की मृत्यु तक हो जाती है. गर्भावस्था में इस तरह के हल्के रक्तस्राव को ग्रामीण महिलाएं आम तौर पर गर्भपात समझ लेती हैं और डॉक्टर के पास न जाकर घरेलू उपाय करने लगती हैं. डॉ. आशा शर्मा कहती हैं कि यह बीमारी भारत में आम है. चूंकि गांवों में ज़्यादातर लोग कम पढ़े-लिखे होते हैं, इसलिए उचित इलाज न के बराबर ही कराया जाता है. ऐसे में ज़रूरी है कि गर्भधारण के बाद पास के स्वास्थ्य केंद्र में नियमित जांच के लिए जाएं. शुरू से ही नियमित डॉक्टरी जांच होने से एक्टॉपिक गर्भधारण जैसी गंभीर परिस्थितियों से बचा जा सकता है. डॉक्टरी जांच न होने पर भी इस बीमारी के लक्षण को पहचान कर तुरंत डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए.

लक्षण

1. पेट के निचले हिस्से में अत्यधिक दर्द व जलन
2. मल और मूत्र त्याग के समय दर्द
3. दर्द के साथ योनि से हल्का रक्तस्राव
4. एक्टॉपिक गर्भधारण में पेचीदगियां पैदा होने पर अंडाणु के फटने के साथ अचानक ही बहुत ज़्यादा रक्तस्राव शुरू हो जाता है. इससे महिला को सदमा भी लग सकता है.

कारण

अपने यहां गांवों में महिलाएं स्वास्थ्य के प्रति बहुत कम जागरूक होती हैं. घर-परिवार का ख़याल रखते हुए वे अपनी देखभाल करने में कोताही बरतती हैं. गांवों में गर्भावस्था की सारी देखभाल बुजुर्ग औरतों और दाइयों पर निर्भर रहने की वजह से ही देश में गर्भावस्था की बीमारियां ज़्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखी जाती हैं. एक्टॉपिक गर्भधारण गांव की महिलाओं में होने के कई कारण हो सकते हैं, पर इनमें मुख्य हैं- गर्भावस्था में स्वास्थ्य और साफ-सफाई की ओर ध्यान नहीं देना. इसके अलावा और भी कारण हैं जैसे:

1. नॉन-स्पेसिफिक फर्टिलिटी- पेट में बच्चा पालने में परेशानी होना
2. ट्यूबरकोलोसिस- यानी तपेदिक रोग से भी यह साधारण तरीक़े से हो सकता है.
3. नॉन स्पेसिफिक इंफ्लामेशन- यह तब होता है, जब गर्भाशय में किन्हीं कारणों से घाव या इंफेक्शन लग जाता है.
4. पेल्विक इंफ्लामेट्री रोग-यानी कि जब नली में किसी प्रकार से क्षति या घाव बन जाए, तब एक्टॉपिक गर्भधारण हो सकता है.
5. क्रॉनिक सेल्विसाइटिस- इसका उपचार शुरुआती स्टेज में इंजेक्शन, एंटीबायटिक और एंटी वेब डायथर्मी द्वारा किया जा सकता है. ज़्यादा समय निकल जाने पर इसे ऑपरेशन के द्वारा निकाल दिया जाता है. समय रहते ऐसा नहीं करने से महिला की जान भी जा सकती है.

बचाव- गर्भावस्था के दौरान इस बीमारी से बचने के लिए महिला अपना ध्यान रखकर बचाव कर सकती है. जब भी किसी प्रकार का कोई भी इंफेक्शन हो, तुरंत डॉक्टरी जांच करा लेनी चाहिए. इसके अलावा अंतरंग स्थानों पर सूजन-जलन होने पर भी सही तरीक़े से उपचार कराएं.

साथ ही हल्का बुख़ार, कमर दर्द या सफेद पानी आने पर भी डॉक्टर से परामर्श ज़रूर करें. ऐसा नहीं करने से परेशानी धीरे-धीरे विकराल रूप ले सकती है और फिर इलाज मुश्किल हो जाता है.

साधारण गर्भधारण में पुरुष के शुक्राणु और स्त्री का अंडाणु योनिमार्ग में मिलकर गर्भाशय तक पहुंचते हैं. वहां पहुंचकर ही भ्रूण का विकास होता है. यह सुरक्षित प्रजनन की विधि है, जबकि एक्टॉपिक गर्भधारण में शुक्राणु और अंडाणु गर्भाशय तक पहुंचने से पहले ही परिपक्व होने लगते हैं, जो उनकी उचित जगह नहीं होती है. कई बार नली यानी फैलोपियन ट्यूब में किसी प्रकार का इंफेक्शन हो जाने पर वे गर्भाशय तक नहीं पहुंच पाते.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

ब्रेकफास्ट को कभी न भूलें

स्वस्थ रहने के लिए हमारे शरीर को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कई प्रकार के विटामिन और खनिज पदार्थों जैसे पोषक तत्वों की ज़रूरत होती है. रात भर की नींद से जागने के बाद शरीर हर तरह के प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, मिनरल और विटामिन को ग्रहण करने के लिए बिल्कुल दुरुस्त होता है. इस समय मेटाबॉलिज़्म तरीक़े से काम करने लगता है, इसके साथ ही कॉरटिसॉल और एड्रेनलिन हार्मोन चरम पर होता है. कॉरटिसॉल को स्ट्रेस हारमोन माना जाता है, जिसके चरम पर पहुंचने पर तनाव की अत्यधिक परेशानियां हो सकती हैं. इस वजह से ही सुबह के वक़्त नाश्ता कर लेने से तनाव कम होने की संभावना होती है. एड्रेनलिन हारमोन से दिल की गति सही हो जाती है, ख़ून की वाहक धमनियां फैल जाती हैं और हवा आने-जाने के लिए बनी नलियां भी खुल जाती हैं. इससे तनाव और भी बढ़ता है. चूंकि यह दिन की शुरुआत होती है, इसलिए इस समय दिमाग़ को भी बहुत ऊर्जा की ज़रूरत होती है. यदि इस समय ज़रूरत से कम या बिल्कुल नहीं खाया जाए तो दिमाग़ काम करने के लिए शरीर से दूसरे तरीक़ों से ऊर्जा प्राप्त करने लगता है. ऐसे में दिमाग़ एक आपात स्थिति पैदा कर शरीर की मांसपेशियों को नष्ट कर इससे ऊर्जा निकाल लेता है. ऐसी हालत में चर्बी शरीर में जमा होने लगती है, जिससे मोटापा बढ़ने लगता है. साथ ही दिमाग़ में रासायनिक सेरोटिन का निर्माण भी सुबह के वक़्त सबसे ज़्यादा होता है. यह हार्मोन न्यूरोट्रांसमीटर होता है. इस समय भूख सबसे कम लगती है और खाने की इच्छा एकदम कम होती है. जैसे-जैसे दिन चढ़ता है सेरोटिन का स्तर कम हो जाता है और बिस्किट, चॉकलेट या ऐसी ही चीज़ें खाने की इच्छा होने लगती है. अगर ऐसे में खाना खाया जाए तो सेरोटिन का स्तर बढ़ता है. नाश्ते में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का संपूर्ण आहार शरीर को सुबह के वक़्त बेहतरीन ऊर्जा प्रदान करता है जो पूरे दिन के कामकाज के लिए काफी अहम होता है. कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन से भरा नाश्ता दिन की शुरुआत में ही कर लेने से पूरे दिन की अधिक भूख लगने की समस्या को ख़त्म कर देता है. इस वजह से वजन बढ़ने की कोई समस्या नहीं होती है. हालांकि सुबह नाश्ते में अधिक ग्लायसेमिक खाना लेना सही नहीं है. ग्लायसेमिक का मतलब है कि शरीर में चीनी के स्तर पर कार्बोहाइड्रेट के असर दिखाने

वाले खाद्य पदार्थ. यदि यह ज़्यादा लिया जाए तो शरीर की संरचना प्रभावित होती है. अनाज खाने पर चीनी का और इंसुलिन का स्तर बढ़ता है. साथ ही सुबह का भोजन पचने में भी आसान होता है, पर यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि नाश्ता आराम से करें, किसी तरह की जल्दबाजी न करें और न ही हड़बड़ी में खाएं. ब्रेकफास्ट में लेने वाली कुछ ख़ास चीज़ों पर ध्यान दें.

1. केक, पेस्ट्री, चिप्स, वेफर्स, पिज्जा, बर्गर, रोल इत्यादि में वसा और चीनी की बहुत ज़्यादा मात्रा होती है, इसलिए ये सभी किसी भी प्रकार से ब्रेकफास्ट में लेना फ़ायदेमंद नहीं है. इनके अलावा ये सब चीज़ें शरीर में महत्वपूर्ण विटामिन और खनिज की कमी पूरी नहीं कर पाते हैं.
2. ब्रेकफास्ट में स्वास्थ्यवर्द्धक खाद्य पदार्थों को शामिल करें. इनमें संपूर्ण पोषण के पदार्थ जैसे मिनरल, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, प्रोटीन इत्यादि प्रचुर मात्रा में होने चाहिए. इनमें वसारहित दूध, दही, सिंके हुए दाने व अनाज, ओटमील इत्यादि लें. अपनी उम्र और शरीर की ज़रूरत के हिसाब से नाश्ता लेना भी ज़रूरी है.
3. स्कूल जाने वाले बच्चे के लिए नाश्ते में दूध, मक्खन-ब्रेड, अंडा, फल/जूस ज़रूर शामिल होना चाहिए. इनका दिमाग़ और शरीर चूंकि विकास के पथ पर होता है, इसलिए स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए ब्रेकफास्ट बहुत ज़रूरी होता है, वरना उन्हें दिनभर के कार्य करने में परेशानी आ सकती है. जैसे पढ़ाई-लिखाई में मन नहीं लगना, आउटडोर खेलों में मन नहीं लगना, आलस्य, सुस्ती इत्यादि जिससे उनके संपूर्ण विकास में बाधा पहुंचती है.
4. वयस्क के नाश्ते में फल/जूस, दलिया, ओट, अंडा, दूध, दही या फिर रोटी-सब्ज़ी होना चाहिए. इस उम्र में ध्यान यह रखना चाहिए कि चीनी का सेवन जितना कम से कम किया जाए, उतना बढ़िया. ऐसा इसलिए कि जितना भोजन सामान्य तौर पर लिया जाता है, उसमें जितनी चीनी होती है वह शरीर के लिए काफी होती है, और ऊपर से चीनी लेने की आवश्यकता नहीं होती है.
5. बुजुर्ग को सुबह के नाश्ते में फल और सलाद लेना चाहिए. इसके अलावा वसारहित, चीनी रहित और ज़्यादा से ज़्यादा तरल पदार्थों का सेवन करना चाहिए. ढलती उम्र में कई प्रकार की बीमारियां जैसे डायबिटीज, अत्यधिक तनाव आदि घेर लेती हैं. यदि ऐसी कोई भी परेशानी हो तो डॉक्टर के परामर्श के अनुसार ही नाश्ता लें. दिल्ली मेडिकल असोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष डॉ. अनिल बंसल के अनुसार नियमित तौर पर सुबह का नाश्ता नहीं करने पर पूरे दिन के लिए ऊर्जा का संचार शरीर में नहीं होता है. इससे काम करने में मन नहीं लगता है, आलस्य और सुस्ती भी घेर लेती है. आगे चलकर रोग प्रतिरोधी क्षमता भी कम हो जाती है और कई बीमारियां घेर लेती हैं. यानी स्वस्थ जीवन के लिए स्वस्थ ब्रेकफास्ट बेहद ज़रूरी है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

ख़ुद को समझ कर ही चुनिए करियर

जीवन का सबसे बड़ा फ़ैसला होता है अपने करियर का चुनाव करना. इसलिए करियर का चुनाव करते वक़्त संबंधित क्षेत्र को जानना बहुत ज़रूरी होता है. वैसे तो हर व्यक्ति में कोई न कोई ख़ास विशेषता होती है, नहीं होती है तो उसे पहचानने की शक्ति. इस गुण को कोई यदि सकारात्मक रूप से ले तो उसके लिए करियर बनाना बड़ा आसान हो जाता है. इसीलिए ज़रूरी है कि अपने स्किल्स के हिसाब से पहले ही करियर तय कर लें, जिससे आगे चलकर किसी परेशानी का सामना न करना पड़े. इसके लिए कुछ सरल तरीक़े हैं, जिन्हें आप आजमा सकते हैं.

1. सकारात्मक रुख़ : विचार हमेशा आशावादी रखने चाहिए, जिससे लोगों को प्रभावित करना आसान हो जाता है. काम करके तो हर व्यक्ति थक जाता है, पर ज़िंदादिली का अहसास काम के माहौल में उब नहीं फैलने देता. आजकल हर दफ्तर में काम का दबाव बहुत होता है, ऐसे में नियोक्ता अपने कर्मचारियों से उम्मीद करता है कि वे दफ्तर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर कंपनी में सद्भावना का माहौल बनाए रखें. चाहे काम कितना भी मुश्किल हो, टारगेट पूरा करना कितना भी कठिन क्यों न हो, पॉजिटिव एटीट्यूट रखने वाले लोग अपना और अपने टीम मेंबर का उत्साह बनाए रखते हैं और काम को हर हाल में पूरा करने की कोशिश करते हैं. ऐसी स्किल की ज़रूरत डेस्क-जॉब, जैसे अकाउंटिंग, डाटा एंट्री ऑपरेटर, ट्रांसलेटर, एडिटिंग, सब एडिटिंग, प्रूफ रीडिंग इत्यादि में ख़ास कर होती है. इसलिए माहौल को हल्का बनाने की क्षमता रखने वाले और सकारात्मक सोच रखने वाले औसत व्यक्ति भी इन क्षेत्रों को चुन सकते हैं.

2. संवाद : बेहतरीन भाषा और बोल-चाल आपके करियर को किन ऊंचाइयों तक ले जा सकता है, यह शायद आप सोच भी नहीं सकते. हम में से कई लोग ऐसे होते हैं, जो वाकपटुता से अपने आस-पास के माहौल को अनुकूल बना लेते हैं. दरअसल किसी भी काम को करते या बोलते समय अपना पूरा ध्यान काम पर लगा पाने के साथ ही यह आंक लेना कि सामने वाला किस प्रकार रिएक्ट कर रहा है और किस प्रकार सामने वाले को आकर्षित किया जा सकता है, ऐसी ही योग्यता को बेहतरीन कम्यूनिकेशन स्किल्स कहते हैं. ऐसे स्किल की ज़रूरत आज कई क्षेत्रों में है, जैसे-मार्केटिंग, एंकरिंग, जॉकिइंग, टेलीकॉम, टूरिज़्म, लैंग्वेज़ , पीआर इत्यादि. इन क्षेत्रों में कामयाबी हासिल करने के लिए कम्यूनिकेशन बेहतरीन होना बहुत ज़रूरी है. इन सब कोर्स करने के लिए किसी भी इंस्टीट्यूट में दाख़िला कम अंकों पर भी हो जाता है. पर विषय की अच्छी समझ और सॉफ्ट स्किल के साथ एक ग्लैमरस और सफल जीवन अवश्य जी सकते हैं.

3. समस्या हल : बेशक़ तकनीकी ज्ञान इस टेक्नो सैवी युग में बेहद ज़रूरी है, पर कैसे भी उलझन भरे माहौल को परेशानी से उबार लेना भी किसी की ख़ास विशेषता होती है. ऐसे लोगों की ज़रूरत आमतौर पर मैनेजेरियल लेवल पर होती है.

■ **समय प्रबंधन:** वैसे तो हर तरह के जॉब में टाइम मैनेज करने की ज़रूरत होती है, पर कुछ काम ऐसे होते हैं जिनमें टाइम मैनेजमेंट की बहुत ज़्यादा ज़रूरत होती है. जहां कंपनियों में कम से कम लोगों को रखे जाने का प्रावधान हो रहा है वहीं डेडलाइन जल्द से जल्द पूरा करने का भी दबाव रहता है. ऐसे में कंपनियां वैसे लोगों को ज़्यादा प्राथमिकता देती है जिन्हें वक़्त पर अपना काम करने की आदत होती है. कहने को तो यह किसी व्यक्ति की आदत होती है, पर असल में यह साधारण सी सॉफ्ट स्किल है. यानी जितनी समझदारी से आप समय का इस्तेमाल करेंगे, उतनी ही अधिक सफलता के हक़दार होंगे. इस स्किल के बल पर कैरियर के ऊंचे मुक़ाम हासिल किए जा सकते हैं. कुछ ख़ास कैरियर ऐसे हैं जिनमें टाइम मैनेज करने की ज़रूरत सबसे पहले होती है. उदाहरण के लिए इकोनॉमिक्स, फाइनांस, इंश्योरेंस, बैंकिंग, लाइफ साइंस, पायलट, क्रूज़ इत्यादि.

■ **टीम भावना :** यह स्किल ख़ासतौर से स्पोर्ट्स में आगे रहने वाले व्यक्तियों में पाया जाता है. इसके अलावा निजी जीवन में दोस्तों के बड़े समूह में रहने वाले विद्यार्थियों को भी इस गुण में महारथ हासिल होती है. हंसते-हंसते ग्रुप में होने वाली छोटी-छोटी समस्याओं को चुटकी में दूर कर देने का यह गुण आगे चलकर उनके करियर को काफी फ़ायदा पहुंचा सकता है. यदि करियर की दिशा निर्धारित करते वक़्त इस स्किल को ध्यान में रखा जाए और इस आधार पर ही करियर का चुनाव किया जाए जिनमें इस स्कील की ख़ास ज़रूरत होती है, तो भविष्य में अंधकार का सामना नहीं करना पड़ेगा. कई क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें अपने समूह के लोगों को अच्छे तरीक़े से डील करना बेहद ज़रूरी होता है. ये क्षेत्र हैं मैनेजमेंट, प्रोडक्शन, नेटवर्किंग, टीम लीडिंग इतयादि. वैसे इस स्कील की सबसे ज़्यादा ज़रूरत स्पोर्ट्स में करियर बनाने पर पड़ती है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

■ **आत्मविश्वास :** सही वक़्त पर सही निर्णय के साथ अपनी बात रखने का एक बढ़िया तरीक़ा भी होना चाहिए. ऐसे में आत्मविश्वास बहुत ज़रूरी होता है. वैसे तो किसी भी व्यक्ति के लिए यह गुण बहुत ज़रूरी होता है, पर नौकरी के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक है. इस गुण के होने से सफलता की राह में आ रहीं कई बाधाएं स्वयं ही दूर हो जाती हैं. वैसे वकालत, डाक्टरी, लाइफ साइंस इत्यादि ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें बग़ैर आत्मविश्वास के कुछ हासिल कर पाना कठिन हो जाता है.

■ **आत्मालोचना :** कई लोग ऐसे होते हैं जो आलोचनाएं सहन नहीं कर सकते. ग़लत आलोचना तो दूर की बात, स्वस्थ आलोचनाएं भी उनके लिए बर्दाश्त के बाहर होती हैं. जबकि स्वस्थ आलोचना को स्वीकार कर अपने अंदर की कमियां निकाली जा सकती हैं और सुधरने के मौके को बढ़ाया जा सकता है. कई लोग ऐसे भी होते हैं जो आलोचना को स्वस्थ भाव से लेते हैं और उसके आधार पर ख़ुद को सुधारने की कोशिश करते हैं. कई क्षेत्रों में अपने काम की आलोचना को सकारात्मक रूप देकर उसे सुधारना ही उस काम को बेहतर तरीक़े से करने का विकल्प है. जैसे एडवरटाइजिंग, कार्टुनिस्ट, लेखन, इलसट्रेशन, डिज़ाइनिंग, चित्रकारी, पेंटिंग, स्केचिंग और ऐसे ही अन्य क्रिएटीव क्षेत्र.

■ **लचीलापन :** यह गुण इस अनिश्चित बाज़ार में एक वरदान की तरह है. पल-पल बदलती बाज़ार की स्थितियों में यह ज़रूरी है कि हर माहौल, हर परिस्थति में काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए. अगर आप सीखने के उत्सुक हैं तभी किसी चुनौती को स्वीकार कर सकते हैं और इसी से अनुभव बढ़ते हैं. इस गुण की ज़रूरत कई क्षेत्रों में ख़ास तौर से पड़ती है. जैसे-कॉल सेंटर, आईटी, मीडिया, फ़ैशन, मार्केटिंग, इंश्योरेंस इत्यादि. चूंकि इनमें बेहतरीन मार्क्स की ज़रूरत नहीं होती, पर इस क्षेत्र में सफलता पाने के लिए व्यक्तित्व और व्यवहार में लचीलापन रखना ही चाहिए.

■ **अत्यधिक तनाव :** ग्लोबलाइज़ेशन के इस युग में कामकाज की प्रक्रिया बहुत तेज़ हो गई है, इसकी वजह से लोगों पर काम का दबाव अत्यधिक रहने लगा है. ऐसे में कई लोग काम करने में परेशानी महसूस करते हैं, जबकि कई लोग इस तरह के तनाव में और बेहतर काम करने में समर्थ होते हैं. इन क्षेत्रों में चाटर्ड अकाउंटेंट, अकाउंट्स के काम, शेयर मार्केट आदि प्रमुख हैं.

■ **लगन :** अपने काम के साथ पूरी तन्मयता और ईमानदारी से काम करने वालों की ज़रूरत यूं तो हर क्षेत्र में है, पर कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें काम के प्रति आपकी लगन और भावनात्मक अहसास की बहुत ज़रूरत होती है. जो अपने काम से प्रेम करते हैं उनके लिए अपना ख़ुद का व्यापार, सिक्यूरिटी सर्विसेज़, फाइनेंस, फॉरेंसिक साइंस, शिक्षण-प्रशिक्षण, सोशल वर्क, रूरल मैनेजमेंट व डेवलेपमेंट आदि बिल्कुल सटीक कैरियर ऑप्शन हैं.

रीतिका सोनाली
ritika.chauthiduniya@gmail.com

समुद्र की गहराइयों में आपका भविष्य

अगर नीले समुद्र की गहराइयों से आपको प्यार है, उसमें रहने वाली रंग-बिरंगी मछलियों व जीव-जंतुओं का जीवन आपको आकर्षित करता है और आप इसका हिस्सा भी बनना चाहते हैं तो फिशरीज साइंस यानी मत्स्य पालन विज्ञान आप के लिए करियर बनाने का एक अच्छा विकल्प है. आपको जानकर आश्चर्य होगा कि मछली के निर्यात में भारत का विश्व में सातवां स्थान है. हमारे देश की 80 लाख से भी अधिक जनसंख्या किसी न किसी रूप में मत्स्य उद्योग से जुड़ी है. यही उनके जीवनयापन का ज़रिया है. केवल भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में फिशरीज साइंस के छात्रों की मांग लगातार बढ़ रही है. पुराने समय में मछुआरे केवल समुद्र से मछलियां पकड़कर इन्हें बाज़ार में बेच दिया करते थे, पर इस तरह से मछलियों के व्यापार से समय के साथ ही उनकी और अन्य समुद्री जीवों की जनसंख्या लगातार घटने लगी है. इसको देखते हुए मछलियों को पकड़ने और बेचने के साथ ही अब इनके बचाव और उनकी आबादी बढ़ाने की भी आवश्यकता समझ आने लगी है. फिशरीज साइंस एक ऐसा विषय है जिसके तहत छात्रों को मछलियों के पालन-पोषण, प्रजनन, सुरक्षा और विभिन्न प्रजातियों को बचाए रखने की शिक्षा दी जाती है. केवल मछलियां ही नहीं, फिशरीज साइंस के तहत छात्रों को पानी में रहने वाले अन्य जीवों के बारे में भी पढ़ाया जाता है. चूंकि व्यापक जल प्रदूषण हो रहा है, इसलिए छात्रों को यह ख़ास तौर से सिखाया जाता है कि किस प्रकार मछलियों और अन्य जीवों को हर तरह के पानी में सुरक्षित रखा जा सकता है. कोर्स के दौरान रिसर्च, डेवलपमेंट और फिशरीज डेवलपमेंट प्लान, मैनेजमेंट स्किल आदि की भी जानकारी दी जाती है. यदि आप फिशरीज साइंस को करियर के रूप में चुनने जा रहे हैं, तो जल और जलजीवन से जुड़ी चीजों में रुचि होना आवश्यक है. इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि सी-सिकनेस जैसी बीमारी न हो, यानी समुद्र से किसी तरह की कोई एलर्जी या भय न हो. फिशरीज साइंस रिसर्च का क्षेत्र है इसलिए आपकी सोच शोध आधारित भी होनी चाहिए.

शैक्षिक योग्यता और चयन प्रक्रिया

देश के दस राज्यों से जुड़ी तक़रीबन 8000 किलोमीटर लंबी तटरेखा का विस्तार फिशरीज की पढ़ाई के लिए बिल्कुल उपयुक्त जगह है. इस कोर्स में ओसीयनोग्राफी, इकोलॉजी, बायोलॉजी, इकोनोमिक्स और मैनेजमेंट जैसे व्यावहारिक विषयों की पढ़ाई होती है. इकोलॉजिकल बैलेंस को बनाए रखने के मद्देनज़र वातावरण पर मछली पकड़ने के असर और उसके परिणामों के बारे में भी पढ़ाया जाता है. फिशरीज साइंस के तहत अंडर-ग्रैजुएट कोर्स में दाख़िला लेने के लिए 12वीं कक्षा में फिजिक्स, केमिस्ट्री और बायोलॉजी विषय होना अनिवार्य है. फिशरीज साइंस में मास्टर्स करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च द्वारा प्रति वर्ष आयोजित होने वाली प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होना होता है. इस प्रवेश परीक्षा की मेरिट लिस्ट के आधार पर ही देश के विभिन्न संस्थानों में दाख़िला मिलता है. दो वर्षीय इनलैंड फिशरीज एंड मैनेजमेंट में दाख़िला लेने के लिए फिशरीज साइंस में दो वर्ष का ग्रेजुएट होना आवश्यक है.

संभावनाएं

कोर्स पूरा करने के बाद एक प्रोफेशनलिस्ट के लिए फिशरीज सेक्टर में ढेरों सभावनाएं हैं. इस कोर्स में बैचलर डिग्री प्राप्त करके पब्लिक सेक्टर जैसे डिपार्टमेंट ऑफ फिशरीज व नेशनलाइज्ड बैंकों में बेहतरीन अवसर पा सकते हैं. इसके अलावा इस स्तर की पढ़ाई से राज्य के कृषि विभाग, सरकारी एजेंसियों और सेंट्रल मरीन फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट जैसे संस्थानों में भी नौकरी पा सकते हैं. सरकारी सेक्टर में फिशरीज ग्रेजुएट राज्य स्तरीय कृषि विभाग में असिस्टेंट फिशरीज डेवलपमेंट ऑफिसर, डिस्ट्रिक फिशरीज डेवलपमेंट ऑफिसर और फिशरीज एक्सटेंशन ऑफिसर बन सकते हैं. केंद्र सरकार के कृषि विभाग में मरीन प्रोडक्टस एक्सपोर्ट डेवलपमेंट ऑथोरिटी, फिशरीज सर्वे ऑफ इंडिया, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ), नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ ऑसीयोनोग्राफी (एनआइओ) जैसे विभागों में काम कर सकते हैं. इसके अलावा फिशरीज ग्रेजुएट प्राइवेट और नेशनलाइज़्ड बैंकों के कृषि विभाग में लोन डिपार्टमेंट में फील्ड बैंक ऑफिसर और मैनेजर के तौर पर भी काम कर सकते हैं. निजी क्षेत्र में एक्वाकल्चर फार्म्स, हैचरीज और प्रोसेसिंग प्लांट्स में नौकरी पा सकते हैं. यदि आपकी रुचि रिसर्च में है तो मत्स्य विभागों के सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं और विभागों में आप रिसर्च असिस्टेंट, फिशरीज डेवलपमेंट ऑफिसर, बायोकेमिस्ट, बायोलोजिस्ट और तकनीशियन के पद पर काम कर सकते हैं. कोर्स के बाद आप प्राइवेट फिशिंग कंपनियों में भी विभिन्न पदों पर काम कर सकते हैं, लेकिन यदि आप कोर्स के बाद नौकरी न करना चाहें तो बैंक से लोन लेकर स्वयं का बिजनेस भी शुरू कर सकते हैं. इसके अंतर्गत आप व्यावसायिक मछली पालन, सीड प्रोडक्शन और ऑरनामेंटल डिशेज या मछली पालकर निर्यात कर सकते हैं. बैचलर डिग्री के बाद आप मास्टर्स कोर्स पूरा करके विभिन्न सरकारी व ग़ैर सरकारी संस्थानों में प्रोफेसर व वैज्ञानिक के पद पर कार्य कर सकते हैं. इसके साथ ही देश के प्रतिष्ठित संस्थान एग्रीकल्चरल साइंटिस्ट रीक्रूटमेंट बोर्ड में भी इंटरव्यू और प्रतियोगिता परीक्षाओं के ज़रिए जाकर अपना भविष्य संवार सकते हैं. विदेशों में लगातार मत्स्योद्योग की बढ़ रही मांग के चलते विदेशी कंपनियों में नौकरी करने के सुनहरे अवसर भी इस कोर्स के अंतर्गत मौज़ूद हैं. अमेरिका जैसे विकसित देशों में फिशरीज कोर्स करके जाने के बाद कंपनियों में मरीन-फिशरीज़ इंटरव्यूयर, इंवायरमेंटल प्रोजेक्ट मैनेजर, इंफोरमेशन टेक्नॉलॉजी स्पेशलिस्ट, इको-टॉक्सीलॉजिस्ट व एक्वेटिक इकोलॉजिस्ट व अन्य बेहतरीन अवसर हैं.

अनुमानित वेतन

इस कोर्स को पूरा करने के बाद किसी भी निजी फिशरीज कंपनी में 8 से 15 हज़ार रुपये प्रतिमाह तक का शुरुआती वेतन आप आसानी से पा सकते हैं. कार्यदक्षता एवं अनुभव के साथ ही आपकी तनख्वाह 25 से 40 हज़ार तक पहुंच सकती है.

संस्थान

- कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर कैंपस, मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार.
- कॉलेज ऑफ फिशरीज साइंस- वेरावल (गुजरात), ढोली (बिहार), मैंगलोर (कर्नाटक), रत्नागिरी (महाराष्ट्र), त्रिपुरा (मणिपुर), मुथुकुर (आंध्र प्रदेश), पंतनगर (उत्तराखंड), राहा (असम), पननगड़ (केरल), बरहामपुर (उड़ीसा)
- पश्चिम बंगाल यूनिवर्सिटी ऑफ फिशरीज साइंस, कोलकाता
- फिशरीज कॉलेज एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, थुथुकुड्डी, तमिलनाडु

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

नाम से ही सिहरा देती है सीआईए

ख़ुफ़िया एजेंसियों की कहानियों में वह सब होता है जो किसी जासूसी फ़िल्म के लिए अनिवार्य होता है. इनकी कहानियों में सस्पेंस, देशभक्ति, प्रेम, आतंक, पैसा, ख़तरा...सब कुछ होता है. दुनिया भर की ख़ुफ़िया एजेंसियों की कहानियों से हम परत-दर-परत पर्दा उठाएंगे. साथ ही आपको रू-ब-रू कराएंगे उनकी हर वाज़िब और ग़ैर-क़ानूनी चालों से. और, आपको दुनिया के सबसे शातिर और ख़तरनाक ख़ुफ़िया संगठनों की हर हरक़त का ब्यौरा देंगे. पिछले अंकों में आपने पढ़ा था केजीबी के बारे में. इस श्रृंखला की अगली कड़ी है-सीआईए.

मार्च 1963, समय अहले सुबह, जगह क्यूबा की राजधानी हवाना के एक ख़ाली मकान की छत. चीनी का कटोरा कहलाने वाले क्यूबा की राजधानी में सब कुछ सामान्य ही था, सिवाय उस एक व्यक्ति के जो उस ख़ाली छत पर अकेला, घात लगाए बैठा था. उसकी स्नाइपर रायफल का निशाना सड़क पर था और उसे इंतज़ार था एक ख़ास व्यक्ति के आने का. वह ख़ास व्यक्ति थे-क्यूबा के करिश्माई कम्यूनिस्ट नेता और राष्ट्रपति फिडेल कास्त्रो. वह ख़ाली मकान उस रास्ते पर था, जिससे कास्त्रो रोज़ाना गुज़रते थे. दुनिया में सबसे सधी सुरक्षा के बीच रहने वाले फिडेल कास्त्रो को अपनी रायफल के निशाने तक ले आने वाला वह हमलावर था, एक अमेरिकी गैंबलर जॉन रोसेली. हालांकि उस रोज़ फिडेल कास्त्रो पर होने वाला हमला विफल रहा और रोसेली गिरफ़्तार हो गया. रोसेली से पूछताछ में पता चला कि वह अमेरिकी और क्यूबाई माफिया से जुड़ा एक मामूली आदमी था. अब सवाल यह था कि आख़िर एक मामूली माफिया क्यों क्यूबा के सबसे बड़े नेता को मारना चाहेगा? जवाब अमेरिका के वर्जीनिया राज्य के लैंगली में बने एक दफ़्तर की कुछ गोपनीय फाइलों में क़ैद था. सीधा-सादा सा दिखने वाला वह दफ़्तर दरअसल दुनिया की सबसे शातिर और ख़तरनाक ख़ुफ़िया एजेंसी का था, जहां सिर्फ़ चंद लोग जानते थे कि रोसेली दरअसल उसी ख़ुफ़िया एजेंसी के इशारों पर काम कर रहा था. वह ख़ुफ़िया एजेंसी थी-अमेरिका की केंद्रीय ख़ुफ़िया एजेंसी-सीआईए. सीआईए, पिछले पचास सालों के विश्व इतिहास में जितना प्रभाव इस नाम का रहा है, उतना असर शायद ही किसी और ने छोड़ा है. सीआईए अमेरिका की ही नहीं विश्व की सबसे बड़ी ख़ुफ़िया एजेंसी है और इसके प्रभाव क्षेत्र में दुनिया का हर कोना है. अत्याधुनिक हथियारों से लेकर जासूसी के नए तरीक़ों तक में सीआईए ने ख़ुफ़िया दुनिया में आए हर बदलाव का नेतृत्व किया है. शायद इसीलिए सीआईए दुनिया की सबसे महंगी ख़ुफ़िया एजेंसी भी है. सीआईए का बजट 44 अरब डॉलर यानी क़रीब 22 खरब रुपये.

सीआईए भले ही केजीबी जितनी ख़ूंख़ार या मोसाद जितनी रहस्यमय न हो, लेकिन शातिर चालों और जोड़तोड़ के खेल में उसकी कोई सानी नहीं है. सीआईए का इतिहास अमेरिका के अंदरूनी और बाहरी दुश्मनों के ख़िलाफ़ साज़िशों और दुनिया को अमेरिकी हिसाब से चलाने की उसकी कोशिशों से भरा पड़ा है. तभी तो सीआईए को दुनिया की सबसे शातिर ख़ुफ़िया एजेंसी के तौर पर जाना जाता है. सीआईए की शुरुआत दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी ख़ुफ़िया तंत्र को चलाने वाली संस्था के तौर पर हुई. हालांकि अमेरिकी ख़ुफ़िया तंत्र पहले से ही काम करता था, लेकिन पहली बार दूसरे विश्व युद्ध के दौरान उसे संगठित किया गया. इस संगठन की ज़िम्मेदारी दी गई एक पुराने वार-हीरो और वक़ील विलियम जे डोनोवन को. और, उस संगठन को नाम दिया गया-रणनीतिक सेवा विभाग यानी ओएसएस. दूसरा विश्व युद्ध ख़त्म होने पर ओएसएस को भंग करके उसकी जगह सभी ख़ुफ़िया संगठनों को एक साथ लाकर 18 सितंबर 1974 को एक नई एजेंसी गढ़ी गई. इसका नाम रखा गया, केंद्रीय ख़ुफ़िया एजेंसी (सेंट्रल इंटेलिजेंस एजेंसी)-सीआईए. सीआईए का मक़सद था अमेरिका के ख़ुफ़िया तंत्र पर नियंत्रण और उसके लिए जानकारी इकट्ठा करना. अपने पहले डायरेक्टर आर्थर डलेस की अगुआई में सीआईए का दायरा बढ़ता गया. सीआईए महज़ एक ख़ुफ़िया एजेंसी से आगे अमेरिकी प्रभुत्व स्थापित करने का सबसे बड़ा माध्यम बन गई. सीआईए शीत-युद्ध के समय में अमेरिका के लिए सबसे बड़ा हथियार बन गई. सोवियत संघ को पछाड़ने के लिए सीआईए ने केजीबी के एजेंटों को तोड़ना शुरू किया. एक-दूसरे के रहस्यों की जानकारी हासिल करने के साथ-साथ यह खेल अमेरिका और सोवियत वर्चस्व की लड़ाई बन गया. कहने की ज़रूरत नहीं कि इस खेल में जीत के लिए हर हथकंडा अपनाया गया. सीआईए ने भी इस खेल में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी. सीआईए का नाम ही दुनिया के कई हिस्सों में ख़ौफ़ और आतंक का प्रतीक बन गया. अपने फ़ायदे के लिए सत्ता पलट और आतंकवाद को बढ़ावा देने में भी सीआईए पीछे नहीं रही. सीआईए राजनीतिक हत्याओं और विद्रोहों को आग देने के लिए बदनाम होती गई. सीआईए के बारे में यह कहा जाता है कि अपनी सुविधा के लिए लोगों को मरवाने और ग़ायब कराने में सीआईए को कोई हिचक नहीं रही. अमेरिकी सरकार के दुश्मनों के ख़िलाफ़ सीआईए ने कई दुश्मन खड़े कर दिए. सीआईए ने अपने राजनीतिक विरोधियों की हत्याओं के लिए न केवल ज़मीन तैयार की, बल्कि जब उसे किसी अन्य ग्रुप के द्वारा उस विरोधी की हत्या की योजना की जानकारी भी मिलती तो सीआईए ने उस पर कोई कार्रवाई नहीं की. सीआईए ने उन सभी घटनाओं से मुंह मोड़ लिया जो उसके लिए सुविधाजनक थी. ईराक़ में जब तत्कालीन शासक क़ासिम को सद्दाम हुसैन की बाथ पार्टी ने सत्ता से हटा दिया तो इस पूरी योजना के पीछे सीआईए की मौन सहमति रही. जब क़ासिम के हश्र के बारे में बाथ पार्टी ने सीआईए से पूछा तो उसका जवाब था कि उन्हें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता की क़ासिम का क्या होता है, उन्हें बस उसे सत्ता से दूर रखना है. क़ासिम को कुछ दिनों के बाद गोली से उड़ा दिया गया. मज़े की बात है कि वही सद्दाम हुसैन और बाथ पार्टी बाद में सीआईए का सबसे बड़ा दुश्मन बन गया. उसी तरह सीआईए के दुश्मन नंबर वन अल-क़ायदा के प्रमुख ओसामा बिन लादेन को भी एक समय सीआईए की मदद मिलती रही. सीआईए के कई ऐसे कारनामे हैं जिन्होंने इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सबसे शातिर और मतलबी ख़ुफ़िया संगठन का तमगा दिला दिया.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रहस्यमयी क्रिप्टोज

सीआईए का मुख्यालय अमेरिका के वर्जीनिया प्रांत के लैंगली में स्थित है. किसी क़िले की तरह मज़बूत सुरक्षा वाला सीआईए मुख्यालय कई एकड़ में फैला है और इसमें सीआईए की अधिकतर शाखाएं हैं. सीआईए के मुख्यालय के अंदर प्रवेश करते ही दीवार पर उसका मोटो यानी उद्देश्य वाक्य लिखा है. अंग्रेजी में लिखी बाइबिल की इस उक्ति का अर्थ है-सत्य की खोज ही आपका एकमात्र उद्देश्य है और यही सत्य आपको मुक्त भी करेगा. मुख्यालय के अंदर ही एक दीवार पर उन एजेंटों का स्मारक है जिन्होंने सीआईए के लिए काम करते हुए अपनी जान दी. इन सबके सम्मान में एक-एक सितारा दीवार पर सजाया गया है. मुख्यालय के पिछले हिस्से में उन दो एजेंटों के सम्मान में एक स्मारक बना है जो सीआईए के मुख्यालय पर हुए हमले में मारे गए थे. सीआईए के डायरेक्टर रहे जार्ज बुश सीनियर के राष्ट्रपति बनने पर उनके सम्मान में मुख्यालय का नाम जार्ज बुश सेंटर रखा गया. हालांकि इस इमारत के अंदर बनने वाली योजनाओं की तरह ही इसके बाहर बनी क्रिप्टिक संरचना क्रिप्टोज भी रहस्यमय है. क्रिप्टोज का निर्माण एक कोड के तौर पर किया गया है और यह कोड आज भी एक पहेली बना हुआ है.

ज़रा हट के

एक सवाल का सवाल है...

बात तो महज़ एक सवाल की थी, लेकिन यह सवाल ऐसा था जिसका जवाब ढूंढ़ने में लग गए पूरे पचास साल. दरअसल गणितीय संरचनाओं के आपसी संबंधों पर आधारित यह सवाल पिछले पचास सालों से विश्व भर के गणितज्ञों के लिए एक चुनौती बना हुआ था. पचास साल के बाद अंततः इस सवाल का हल निकल आया है. गणित की दो सबसे कठिन मानी जाने वाली शाखाओं बीजगणितीय ज्यामिती और टॉपोलॉजी के संगम से बना यह सवाल 50 साल पहले फ्रेडरिक हिर्जेब्रच ने गढ़ा था. तब से यह सवाल हल के करने के सारे प्रयास असफल रहे थे. अब म्यूनिख की लुडविग मैक्सीमिलिअंस यूनिवर्सिटी (एलएमयू) के प्रोफेसर डायटर कोत्सचिक ने एक रास्ता ढूंढ़ निकाला है. दरअसल टॉपोलॉजी में उन ज्यामितीय आकृतियों की फ्लेक्सिबिलिटी का अध्ययन किया जाता है, जिनका स्वरूप विकृत होने पर भी नहीं बदलता. वहीं बीजगणितीय ज्यामिती में समीकरणों के आधार पर ज्यामितीय समस्याओं का हल निकाला जाता है. हिर्जेब्रच का सवाल इन्हीं दोनों के मेल से बना था. इस सवाल में आकृतियों की फ्लेक्सिबिलिटी और वर्तमान स्वरूप के संबंध पर आधारित समीकरण थे. सीधे सादे शब्दों में इस सवाल से यह सवाल था कि क्या किसी ज्यामितीय आकृति के गणितीय समीकरण उसकी फ्लेक्सिबिलिटी पर निर्भर करते हैं या उसके वर्तमान स्वरूप पर. अब प्रोफेसर कोत्सचिक ने इस सवाल का हल ढूंढ़ निकाला है. दरअसल किसी भी ज्यामितीय आकृति के गुण एक संख्या के द्वारा दर्शाए जाते हैं जिसे चेर्न नंबर कहते हैं. प्रोफेसर कोत्सचिक ने यह साबित कर दिया है कि यह नंबर वर्तमान स्वरूप का गुणक होता है न कि फ्लेक्सिबिलिटी यानी मूल स्वरूप का. यानी आकृति के गणितीय समीकरण भी उसके वर्तमान स्वरूप पर निर्भर करते हैं. फ्रेडरिक हिर्जेब्रच के इस सवाल का जवाब तो मिल गया, लेकिन गणितीय दुनिया में कई ऐसी अबूझ पहेलियां हैं जो सालों से गणितज्ञों को उलझाए हुई हैं.

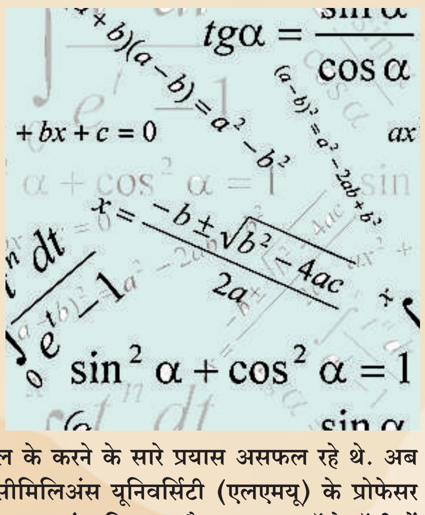

दीवालिया हो रहा है कैलिफोर्निया

अर्नोल्ड श्वार्जनेगर बड़े एक्शन हीरो हैं, अपनी फिल्मों में वह आख़िरी मौकों पर कठिन से कठिन चुनौती को चलता कर देते हैं. ख़तरनाक से ख़तरनाक मुश्किल भी उनके लिए आसान हो जाती है, लेकिन अब उनके सामने जो मुश्किल आ खड़ी हुई है उससे निपटना इतना आसान नहीं है. यहां उनके फिल्मी पैंतरे नहीं चलेंगे, क्योंकि यह चुनौती फिल्मस्टार श्वार्जनेगर के लिए नहीं कैलिफोर्निया के गवर्नर श्वार्जनेगर के लिए है. दरअसल अपनी समृद्धि के मशहूर अमेरिकी राज्य कैलिफोर्निया की असली हक़ीक़त सामने आ रही है, और यह हक़ीकत चौंकाने वाली है. कैलिफोर्निया राज्य एक विफल राज्य का दर्ज़ा पाने के कगार पर खड़ा है. कैलिफोर्निया की अर्थव्यवस्था भारी संकट में है. उसके हिसाब में 24 बिलियन डॉलर यानी क़रीब 12 खरब रुपये का घाटा है और उसे इसका परिणाम आने वाले हफ़्तों में झेलना पड़ सकता है. कैलिफोर्निया की अर्थव्यवस्था पर वैश्विक मंदी का गहरा असर हुआ है. वैसे कैलिफोर्निया की इस हालत से पूरे विश्व पर प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि उसकी अर्थव्यवस्था अमेरिका में सबसे बड़ी और विश्व में आठवें नंबर की है. उसकी अर्थव्यवस्था का महत्व इसी बात से समझा जा सकता है कि वह ब्राज़ील के बराबर और सऊदी अरब से तीन गुनी बड़ी है. इसलिए कैलिफोर्निया राज्य की आर्थिक स्थिति का चरमराना पूरी दुनिया पर प्रभाव डाल सकता है.

अमेरिका की मुफ़लिसी

अमेरिका में लाखों लोग ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं. स्थिति यह है कि अमेरिका में हर चार में से एक बच्चा ग़रीबी रेखा के नीचे जीने को मजबूर है. हालांकि ग़रीबी के विरुद्ध अमेरिका की लड़ाई सतत जारी रहने वाली प्रक्रिया है.

अमेरिका ने ग़रीबी की जो परिभाषा दी है, उसमें मुद्रास्फीति और सीपीआई (कंज़्यूमर प्राइज इंडेक्स) को शामिल किया गया है. इसकी पहचान वस्तु, सुविधाओं में कमी और समाज की मुख्यधारा के लोगों में मूलभूत सुविधाओं की कमी है. ग़रीबी को सांख्यिकीय आंकड़े और विश्लेषणों के आधार पर मापा गया है. वर्ष 2000 में ग़रीबी दर 11.3 फीसदी के हिसाब से सबसे ज़्यादा थी, उसके बाद के चार वर्षों में इस दर में कुछ कमी आई. इन चार वर्षों के दौरान 18 वर्ष तक के बच्चों में ग़रीबी दर 16.2 प्रतिशत से घटकर 5.8 प्रतिशत रह गई, जो वर्ष 2006 तक आते-आते 2.4 प्रतिशत ही रह गई. लेकिन 2008 में हालात एकदम बदल गए. ओईसीडी (ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक कॉपरेशन एंड डेवलपमेंट) ने विभिन्न स्तरों से प्राप्त सूचकों का विश्लेषण कर बताया है कि सिर्फ़ 2008 में ही अमेरिका में बच्चों में ग़रीबी 20 प्रतिशत पाई गई. एक अलग सर्वे के हवाले से कहा गया है कि अमेरिका में हर छह बच्चे में से एक बच्चा ग़रीबी में जीवन यापन करने को मजबूर है. साफ है कि बाहरी चकाचौंध के भीतर अमेरिकी बच्चों की हक़ीक़त कुछ और है.

अंग्रेजी में दस लाखवें शब्द की खोज

किसी भी दूसरी भाषा की तुलना में अंग्रेजी में शब्दों की संख्या सबसे ज़्यादा है. और अब अंग्रेजी भाषा में दस लाखवां शब्द भी जुड़ गया है. यह दावा एक वेबसाइट ग्लोबल लैंग्वेज मॉनिटर का है, जो गणितीय सूत्रों का उपयोग कर भाषा में जुड़ने वाले शब्दों का आकलन करता है. साइट के अनुसार वेब 2.0 शब्द को अंग्रेजी भाषा का दस लाखवां (मिलियंथ) शब्द बनने का गौरव मिला है. वेबसाइट का मानना है कि रोज़ाना 14 से अधिक नए शब्द अंग्रेजी में जोड़े जाते हैं. हालांकि भाषा के जानकारों ने कहा कि किसी भाषा के शब्दों की गिनती करना कोई आसान काम नहीं है. इसलिए कि भाषा में हमेशा बदलाव का क्रम जारी रहता है. ग्लोबल लैंग्वेज के अध्यक्ष और मुख्य शब्द विश्लेषक पॉल जेजे पेयाक ने कहा कि दस लाखवें शब्द की खोज उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना यह प्रोजेक्ट, जो यह दर्शाता है कि अंग्रेजी अब एक वैश्विक और जटिल भाषा बन गई है. हालांकि उन्होंने यह भी कहा कि अंग्रेजी लोगों की भाषा है. इंटरनेट, वैश्विक व्यापार और वैश्विक यात्रा ने अंग्रेजी को दूसरी भाषाओं के और नज़दीक ला दिया है. यही वजह है कि उसके शब्दों में लगातार वृद्धि हो रही है और वह और विस्तृत हो गई है. उन्होंने कहा कि सभी नए शब्दों को इसमें शामिल नहीं किया जाता है. इसमें उन्हीं शब्दों को शामिल किया जाता है जिसका विश्व के 60 फीसदी हिस्से में आधिकारिक रूप से कोई अर्थ हो और यह भी ज़रूरी है कि यह विभिन्न समुदाय के लोगों के लिए भी एक अर्थ देता हो. एक तकनीकी शब्द, जिसे सिलिकॉन वैली में ही जाना जाता हो, उसे शब्दों की मुख्यधारा के रूप में नहीं गिना जाएगा. इस लिहाज़ से कौन से शब्द को कितनी बार उपयोग किया गया यह देखने के लिए उनके कंप्यूटर ने पांच हज़ार शब्दकोशों, पब्लिकेशंस और ख़बरों के साथ- साथ करोड़ों वेबसाइट पर नज़र रखी थी.

अमेरिका की हार है अहमदीनेजाद की जीत

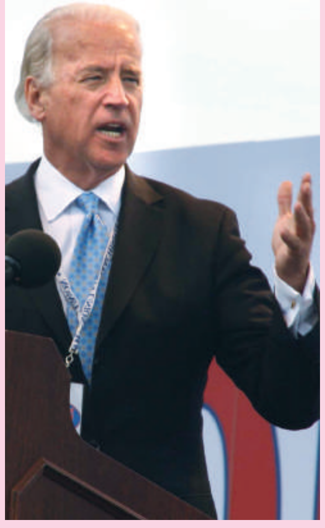

ज़ाहिर तौर पर लग रहा है कि वे बोलने की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना चाहते हैं. जिस तरह वह भीड़ पर लगाम कस रहे हैं, जिस तरह जनता के साथ बर्ताव हो रहा है, उस तरह तो नतीजों के बारे में कुछ भ्रम स्पष्ट तौर पर हो सकता है.

-जो बिडेन (अमेरिका के उपराष्ट्रपति)

राहुल मिश्र

महमूद अहमदीनेजाद चार साल और ईरान के राष्ट्रपति बने रहेंगे. यह ईरान की जनता ने तय कर दिया है, लेकिन यही बात अमेरिका समेत इज़राइल और कुछ अरब देशों को हज़म नहीं हो रही है. अमेरिकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने ईरान के साथ संवाद की संभावनाएं तलाशने के वायदे तो किए, लेकिन चुनाव परिणामों को देखते हुए उन्होंने उस पर रोक लगा दी. चुनाव में धांधली की आशंका सबसे पहले अमेरिका ने ही जताई. अमेरिकी बयान से यह पक्का हो गया कि उसे ईरान में ऐसे चुनाव परिणाम की उम्मीद नहीं थी.

दरअसल, अमेरिका जानता था कि चुनाव के नतीजे संवाद की शर्तों पर असर डाल सकते हैं. लिहाज़ा, परिणामों का इंतज़ार करने में ही भलाई है. इसके पीछे एक रणनीति थी. दरअसल अमेरिका को भरोसा था कि ईरान की जनता 2005 के राष्ट्रपति चुनाव में की गई ग़लती को नहीं दोहराएगी. वह इस बार सुधारवादी ताक़तों को मज़बूत करेगी और अहमदीनेजाद के साथ-साथ कट्टरपंथी शासकों को सबक़ सिखाएगी. लेकिन ऐसा हुआ नहीं. ईरान के सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 12 जून को 85 फीसदी मतदान हुआ. 62.6 फीसदी वोटों के साथ अहमदीनेजाद ने अपने प्रतिद्वंद्वी मीर हुसैन मोसावी (33.75 फीसदी) को हराकर जनता से अगले चार साल तक के लिए अपनी नीतियों को लागू रखने पर फिर मुहर लगवा ली.

इससे तो यही साफ होता है कि अमेरिका को नागवार लगने वाले मुद्दे मध्य एशिया की राजनीति पर छाए रहेंगे. ईरान में अगले चार सालों तक इस्लामिक क्रांति की लौ जलती रहेगी. देश में किसी तरह से भी सत्ता में बदलाव की ओबामा की उम्मीद ख़त्म हो गई है. इसलिए ओबामा को फिर यह साबित करना होगा कि ईरान में सत्ता परिवर्तन की संभावनाओं को जनता द्वारा नकार दिए जाने के बाद इस्लामिक देशों के साथ शुरू की गई पहल किस हद तक कारगर साबित होगी. साथ ही, इस परिस्थिति में कई दूसरे अहम सवालों के जवाब भी अमेरिका को तलाशने होंगे. मसलन, ईरान के परमाणु कार्यक्रम को रोकने में क्या अमेरिका सफल होगा? इज़राइल की सुरक्षा को सुनिश्चित करने का आश्वासन जारी रहेगा? और सबसे अहम, क्या अमेरिका मध्य एशिया में शांति प्रक्रिया को फिर शुरू करके मध्य एशिया में वर्चस्व की दौड़ पर लगाम लगा पाएगा? इसके साथ ही क्या मध्य एशिया में अमेरिकी प्रासंगिकता बनी रहेगी?

सवाल उठता है कि ईरान के चुनाव में यह कैसे हो गया? अमेरिका जो चाहता था, वह क्यों नहीं हो पाया? दरअसल, अमेरिकी प्रशासन को मिल रही जानकारियों के मुताबिक, ईरान में अहमदीनेजाद के ख़िलाफ़ जनता में काफ़ी असंतोष था. अमेरिकी समझ के मुताबिक पिछले तीस सालों में ईरान के मध्य वर्ग ने तरक़्क़ी की और तकनीकी क्रांति को क़रीब से देखा, जो काफी हद तक सही है. यह वर्ग ईरान में जारी इस्लामिक बंदिशों के ख़िलाफ़ शुरू से ही आवाज़ उठाता रहा है. यहां तक कि 2005 के राष्ट्रपति चुनावों का भी इस वर्ग ने बहिष्कार किया था. कट्टरपंथियों के ख़िलाफ़ खड़े इस वर्ग को ईरान में वह अधिकार चाहिए, जो किसी भी पश्चिमी देश के नागरिकों को मुहैया है. इस वर्ग को ईरान सरकार के तथाकथित नैतिकतावादी रवैए (मोरल पोलिसिंग) से ख़ासी नाराज़गी है. उधर, मध्य वर्ग की महिलाओं को भी अपनी स्वतंत्रता की दरकार है. यह ईरान का वह तबका है, जो अमेरिका और पश्चिमी देशों के साथ बेहतर संबंधों की दरकार रखता है. यह वह तबका है जो अंग्रेज़ी भाषा का इस्तेमाल करता है और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर बाकी दुनिया से संवाद में है. लिहाज़ा, अमेरिका ने 2009 के चुनावों में भी इस वर्ग को संपूर्ण ईरान समझने की भूल कर दी और एक ग़लत उम्मीद लगा बैठा.

अहमदीनेजाद के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ रहे मीर हुसैन मोसवी के चुनाव प्रचार और रैलियों को पश्चिमी मीडिया अंतर्राष्ट्रीय ख़बर बना रहा था. दुनियाभर में यह ख़बर आम हो रही थी कि अहमदीनेजाद को ईरान की जनता नकार देगी. पिछले तीस सालों से दबी-कुचली ईरानी जनता लोकतंत्र के पश्चिमी मानकों को पाने की कोशिश में रूढ़िवादी और कट्टरपंथी इस्लामिक गणराज्य को एक करारा झटका देने वाली है. अमेरिका को उम्मीद यह भी थी कि ईरान के मतदाता 2005 के राष्ट्रपति चुनावों में की गई वह ग़लती नहीं दोहराएंगे, जिसमें इस्लामी गणराज्य के विरोध में युवाओं और सुधारवादी ताक़तों ने लामबंदी करके चुनावों का बहिष्कार कर दिया था और नतीज़तन अहमदीनेजाद सत्ता पर क़ाबिज़ हो गए थे. वहीं अमेरिकी मीडिया अहमदीनेजाद को एक अभद्र नेता के तौर पर पेश करता रहा. अमेरिका के एक चर्चित टैबलॉयड ने तो हमेशा अहमदीनेजाद को एक एविल मैडमैन से संबोधित किया, और चुनावों के ठीक पहले तो इस टैबलॉयड ने उन्हें बंदर और बौने तक की उपाधि दे दी.

वहीं दूसरी तरफ़, अमेरिकी और यूरोपीय मीडिया मीर हुसैन मौसवी को एक पढ़ा-लिखा, उदार और पश्चिमी देशों का समर्थन करने वाले शख़्स की तरह पेश करता रहा. मौसवी ईरान-ईराक़ युद्ध के दौरान 1981 से 1989 तक ईरान के प्रधानमंत्री के पद पर क़ाबिज़ रहे. मौसवी किसी वक़्त ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्लाह अली ख़ुमैनी के बेहद नज़दीकी माने जाते थे. लेकिन कुछ समय ग़ैर राजनीतिक जीवन जीने के बाद वह ईरान की राजनीति में उदारवादी और सुधारवादी की शक्ल में फिर लौटे. चुनाव प्रचार के दौरान बदलाव की बात कर उन्होंने प्रचार को ओबामाकृत कर दिया. अमेरिका को मौसवी के राष्ट्रपति बनने की उम्मीद भी इसीलिए हो गई थी. अमेरिकी रणनीतिकारों को यह लगा कि अहमदीनेजाद से बातचीत शुरू करने से बेहतर है कि इंतज़ार कर चुनावों में मोसावी की जीत के बाद बातचीत को अमली जामा पहनाया जाए.

लेकिन, पहले की ही तरह ईरान के इस चुनाव ने भी दुनियाभर को चकित कर दिया. इतना कि अमेरिका को यह हज़म नहीं हो सका. चुनावी प्रक्रिया किसी भी देश का आंतरिक मामला है. इसका लिहाज़ किए बग़ैर अमेरिकी उपराष्ट्रपति को यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं हुआ कि ईरानी चुनाव में बड़े स्तर पर धांधली हुई. वहीं अमेरिका यह भली-भांति जानता है कि ईरान अपने चुनावी प्रक्रिया में विदेशी प्रेक्षकों को आने की इजाज़त नहीं देता. लिहाज़ा, चुनावों पर सवाल खड़े करने से ईरान की व्यवस्था पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा. लिहाज़ा, अहमदीनेजाद के चुनाव के मुद्दे पर किसी तरह की अंतर्राष्ट्रीय सहमति से भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. यह उसकी तरफ़ से महज़ दबाव की एक राजनीति है. दरअसल, अमेरिका को यह समझ नहीं आ रहा कि वह क्यों बार-बार ईरान की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को समझने में नाकाम हो रहा है.

दरअसल 1979 में शाह शासन ख़त्म होने के बाद से ही अमेरिका इस भ्रम को पाल कर बैठा है कि वह क्रांति उदारीकरण के लिए हुई थी. अमेरिका को लगता है कि ईरान की जनता लोकतंत्र के पश्चिमी मानकों की तरफ़ आकर्षित है, और जल्द ही ईरान में उदारवादी ताक़तें इतनी मज़बूत हो जाएंगी कि वह सरकार बनाने में कामयाब होंगी. लेकिन, अमेरिका इतिहास के कुछ तत्वों को नकार रहा है. वह यह भूल रहा है कि जिसे वह उदारवादी ताक़त समझ रहा है, वह तबका दरअसल ईरान के शहरी इलाक़ों में अल्पसंख्यक है और 1979 की क्रांति में उसका कोई योगदान नहीं रहा है. यह बात अलग है कि पिछले तीस सालों में इस तबके ने तरक़्क़ी कर ली है और दुनियाभर में ईरान की एक दूसरी छवि बनाने में भी कारगर है. लेकिन, उनकी बनाई छवि को ईरान की हक़ीक़त समझने की ग़लती नहीं की जा सकती है.

अमेरिका ने पश्चिमी मीडिया को आधार बना कर अपनी नीति भी बना डाली. वह मीडिया की मदद से हमेशा इस कोशिश में रहता है कि ईरान में उदारवादी ताक़तों को संगठित और मज़बूत किया जाए. लिहाज़ा मौजूदा शासन की एक ग़लत छवि दुनियाभर में परोसी जाती है. लेकिन अचरज की बात यह है कि ख़ुद अमेरिका इन ख़बरों से भ्रमित दिखता है और इसीलिए अहमदीनेजाद की ताक़त को कम करके आंकता है. उसने इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया कि अहमदीनेजाद की असली ताक़त ईरान के बहुसंख्यक ग्रामीण इलाक़ों के ग़रीब हैं, जिन्हें फ़ारसी के अलावा कोई दूसरी भाषा नहीं आती और वह अमेरिकी और पश्चिमी प्रोपेगेंडा से अछूते हैं. अहमदीनेजाद की एक और बड़ी ताक़त है उनकी ईमानदारी. उसके साथ ही ईरान में व्याप्त भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ अहमदीनेजाद की मुहिम उन्हें देश की ग़रीब जनता के बीच काफी लोकप्रिय बनाती है. दूसरी ओर, उनकी ईमानदारी उन अमीरों को रास नहीं आती जिन्होंने शाह के शासनकाल में धन बटोरा था. तीसरी अहम ताक़त, जिसे अमेरिका ने नज़रअंदाज किया, वह है ईरान की राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे पर अहमदीनेजाद का कड़ा रुख़. ईरान की जनता को पूरा भरोसा है कि वह अमेरिकी और पश्चिमी दबाव में आकर देश की नाभिकीय परियोजना पर कोई समझौता नहीं करेंगे और ज़रूरत पड़ने पर वह किसी भी ताक़त से भिड़ने के लिए तैयार हैं.

लिहाज़ा, जब चुनाव के नतीजे आने के बाद ईरान के शहरी इलाक़ों मेंसमर्थकों ने प्रदर्शन और आगजनी शुरू कर दी और अमेरिका ने मामले को तूल देने के लिए ईरान के ख़िलाफ़ अंतर्राष्ट्रीय सहमति बनानी शुरू कर दी, तो ईरान के सर्वोच्च धार्मिक नेता (सुप्रीम लीडर) अयातुल्लाह खामनेई को हस्तक्षेप कर मामले की जांच के आदेश देने में ही वाजिब रणनीति समझ में आई. यानी राष्ट्रपति चुनाव तो ईरान में हुआ है, लेकिन शह और मात का खेल सबसे अधिक खेलने में अमेरिका लग गया है. इसकी काट में खामनेई ने पूरे मामले की ही जांच का आदेश देकर एक ज़ोरदार चाल चल दी है.

इस बीच, अमेरिकी बयान और मीडिया में छप रही ख़बरों से साफ है कि पश्चिमी देश ईरान के नतीजों के ख़िलाफ़ अपने गुस्से का इज़हार करने के लिए ईरानी जनता से ही नतीजों का विरोध करने की लगातार अपील कर रहा है. क्या अमेरिका की यह कोशिश है कि वह ईरान में चल रहे विरोध प्रदर्शन की आग में घी का काम करे या फिर इसे मौजूदा हालात में ईरान से बातचीत शुरू करने के पहले की दबाव की राजनीति माना जाए?

rahul.chauthiduniya@gmail.com

क्रांति के बाद

1979 की क्रांति के बाद ईरान में जनमत संग्रह के ज़रिए एक नए संविधान को पारित किया गया. इसके तहत एक मिलाजुला राजनीतिक ढांचा बनाया गया. इस ढांचे में लोकतंत्र के साथ-साथ ग़ैर चयनित (नॉन एलेक्टेड) सर्वोपरि धार्मिक नेता (सुप्रीम लीडर) का प्रवधान किया गया. लिहाज़ा ईरान के राजनीतिक ढांचे में मनोनीत संस्थाओं के साथ निर्वाचित संस्थाएं मौजूद हैं. हाल के दिनों में मनोनीत संस्थाओं को लोकतांत्रिक संस्थाओं से कड़ी चुनौती मिल रही है. इसके बावजूद, धार्मिक नेता के वजूद पर कोई सवाल नहीं खड़ा होता.

सर्वोच्च नेता (सुप्रीम लीडर)

ईरान के सर्वोच्च नेता में सभी राजनीतिक और धार्मिक शक्तियां निहित हैं. वह राष्ट्रपति से भी ऊपर होता है. वह सेना प्रमुख और सेना कमांडरों, चीफ जस्टिस के साथ-साथ उन छह इस्लामिक जजों की नियुक्ति करता है जो बारह सदस्यीय गार्जियन काउंसिल में बैठते हैं. अयातुल्लाह खामनेई इस पद पर 1989 से हैं, जब उन्हें 86 सदस्यीय असेंबली ने चुना था. इस असेंबली का काम सर्वोच्च धार्मिक नेता के कामकाज पर नज़र रखना होता है. अयातुल्लाह खामनेई से पहले इस पद पर अयातुल्लाह रुहोला ख़ुमैनी आसीन थे, जिन्होंने 1979 में शाह का तख़्तापलट किया था.

राष्ट्रपति

ईरान का निर्वाचित राष्ट्रपति सर्वोच्च नेता के अधीन रहते हुए आर्थिक और राष्ट्रीय मामलों का संचालन करता है. राष्ट्रपति, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ईरान का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ समझौतों पर हस्ताक्षर करता है. अपने लिए मंत्रिमंडल का चयन ख़ुद राष्ट्रपति करता है, हालांकि उस चयन पर पार्लियामेंट की सहमति लेनी ज़रूरी होती है. देश की सुरक्षा का ज़िम्मा भी राष्ट्रपति के पास होता है और वह देश की सुरक्षा काउंसिल की अध्यक्षता करता है. राष्ट्रपति का कार्यकाल चार साल का है और वह लगातार दो बार से अधिक राष्ट्रपति का चुनाव नहीं लड़ सकता.

गार्जियन काउंसिल

गार्जियन काउंसिल ग़ैर निर्वाचित 12 सदस्यीय इमामों और इस्लामी जजों की संस्था है. इसमें से आधे सदस्यों को सर्वोच्च नेता मनोनीत करता है और बाक़ी लोगों को मजलिस (पार्लियामेंट) से मनोनीत किया जाता है. इस काउंसिल को मजलिस में पारित सभी क़ानून को वीटो करने का अधिकार होता है, और चुनावों में लड़ने के लिए उम्मीदवारों के नाम को भी काउंसिल तय करता है. 2009 के चुनावों में भी काउंसिल ने लगभग 400 उम्मीदवारों में से महज़ चार उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने की इजाज़त दी. इनमें से सभी महिला उम्मीदवारों को काउंसिल ने नकार दिया था.

मजलिस (पार्लियामेंट)

ईरान की पार्लियामेंट को मजलिस नाम से जाना जाता है और यह राष्ट्रीय स्तर की विधायिका है, जिसमें जनता के चुने हुए 290 सदस्य होते हैं. मजलिस के लिए चुनाव हर चार साल पर कराए जाते हैं, और इन चुनावों को लड़ने के लिए गार्जियन काउंसिल की मंज़ूरी लेना हर उम्मीदवार के लिए ज़रूरी होता है. मजलिस, मंत्रिपरिषद के साथ-साथ राष्ट्रपति से जवाब मांग सकती है और उन्हें पद से हटाने के लिए महाभियोग भी ला सकती है.

अयातुल्लाह अली खामनेई

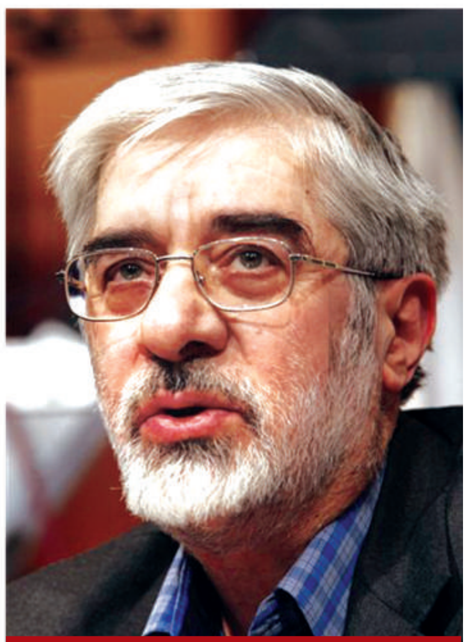

अली सैयद मोसावी

फोटो-पीटीआई

तपिश में रंगमंचीय सुकून

प्रदीप कुमार

मौजूदा दौर में कला प्रशंसकों की आम शिकायत है, ज़्यादा नाटक देखने को नहीं मिलते. नाट्य समारोहों का चलन कम होता जा रहा है. अच्छे नाटकों का मंचन नहीं होता. लेकिन दिल्ली में पारा चढ़ते ही राजधानी के रंग संस्थानों में कला प्रेमियों की शिकायतों को दूर करने की कोशिश होती है. शीर्ष रंगमंचीय संस्थान ग्रीष्मकालीन नाट्य समारोहों के आयोजन के बहाने कलाप्रेमियों को नाट्यकला से जोड़ते हैं. इस दौरान कोशिश यही होती है कि समारोहों में एक से एक उम्दा नाटकों का मंचन किया जाए, इसमें कुछ को दर्शक काफी पसंद करते हैं तो कुछ नकार दिए जाते हैं. तो बीते दो सप्ताह के दौरान दिल्ली में रंगमंच में काफी हलचल देखने को मिली. हालांकि इसी दौरान मशहूर रंगकर्मी हबीब तनवीर का गुजरना किसी सदमे से कम नहीं रहा.

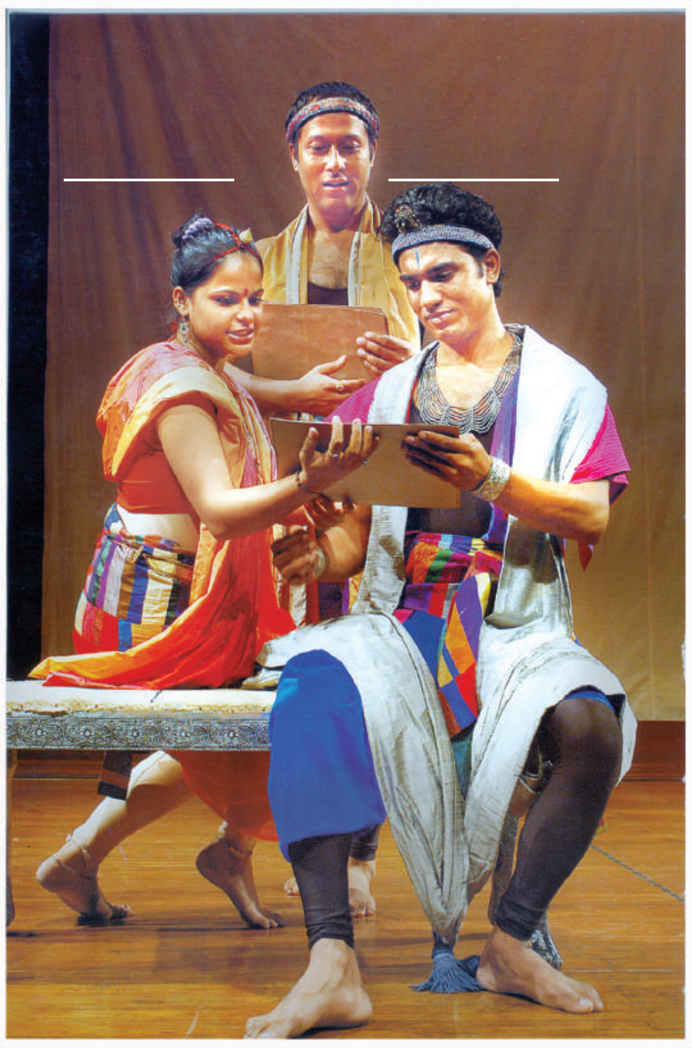

बात सबसे पहले राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (एनएसडी) रंगमंडल की, जिसने 21 मई से 17 जून के दौरान नौ नाटकों के क़रीब 35 मंचन किए हैं. समारोह की शुरुआत बी. जयश्री निर्देशित नाटक *सदारमे* से हुई. नाटक के लेखक बी नरसिंह शास्त्री हैं, जबकि इसका अनुवाद शैलजा राय ने किया है. जयश्री ख्यातिप्राप्त नाट्य संस्था *स्पंदन* की रचनात्मक निदेशक हैं. *सदारमे* के निर्देशन पर जयश्री कहती हैं– जब मुझे रंगमंडल के लिए निर्देशन का मौका मिला तो मैंने कंपनी शैली में *सदारमे* का मंचन किया. जिसमें सादगी, ख़ूबसूरती और लोकतत्वों का परिपूर्ण मिश्रण शामिल है. *सदारमे* का शाब्दिक अर्थ है– हमेशा सुंदर (सदा+रमे, सदा का मतलब हमेशा से है जबकि रमे संस्कृत शब्द रम्य से बना है). कथावस्तु में एक राजकुमार है जिसकी सांसारिक जीवन बिताने में कोई दिलचस्पी नहीं है. सांसारिक दुनिया से दूर वह दर्शन और अध्यात्म में सुकून तलाशने की कोशिश करता है, लेकिन एक सुंदर, सुशील कन्या सदारमे से मुलाकात के बाद उसकी दुनिया बदल जाती है. जीवन की चुनौतियों का यह दंपति किस तरह से सामना करती है, इसको जयश्री मंच पर ख़ूबसूरती से दर्शाने में कामयाब रहीं. ऐसे में ज़ाहिर है कि नाटक में हल्के-फुल्के हास्य के पुट भरे हुए हैं. वैसे यह प्रस्तुति काफी संगीतमय है. इस नाटक को देखते हुए आपका परिचय रंग संगीत से होता है, जहां संवाद गीतों में परिवर्तित हो जाते हैं, और गानों की प्रकृति काफी कुछ संवादों जैसी हो जाती है. मूल नाटक क़रीब सौ साल पुराना है. दक्षिण भारत में रात दस बजे से शुरू हो कर अहले सुबह तक यह नाटक खेला जाता है. निर्देशिका ने इसे दो घंटे दस मिनट में बांधने की कोशिश ज़रूर की है, लेकिन यह पारंपरिक नाटक दर्शकों को रिझाने में कामयाब नहीं रहा.

इस रंग समारोह में सदारमे के अलावा प्रसन्ना निर्देशित आचार्य *तारतूफ़* और *उत्तर रामचरित*, विजय तेंदुलकर के दो नाटक *जात ही पूछो साधु की* और *घासीराम कोतवाल*, नादिरा ज़हीर बब्बर का *1857 एक सफ़रनामा*, मोहन महर्षि का *मैं इस्तानबुल* हूं, स्वर्गीय चेतन दातार का *राम नाम सत्य* है और रंगमंडल प्रमुख सुरेश शर्मा निर्देशित *काफ़्का-एक अध्याय* का मंचन किया गया. विजय तेंदुलकर के नाटकों का निर्देशन राजिंदर नाथ का रहा. अलग-अलग कथावस्तु के चलते इन नाटकों की प्रस्तुति प्रभावी रही.

नादिरा ज़हीर बब्बर निर्देशित नाटक अपने ऐतिहासिक बोध की वजह से सराही जाने वाली प्रस्तुति बन पड़ी है. आज़ादी की पहली लड़ाई जैसे विस्तृत फलक को दो घंटे बीस मिनट की अवधि में मंच पर उतारना एक बड़ी चुनौती है, जिसे नादिरा ने बख़ूबी संभाला है. सत्य घटनाओं पर आधारित इस नाटक में दिखाया गया है कि 1857 के विद्रोह में किस तरह आम आदमी के सहयोग और बलिदान की अहम भूमिका रही. यह नाटक अनपहचाने शहीदों के योगदान को रेखांकित करने वाली प्रस्तुति है. इस समारोह में मोहन महर्षि की प्रस्तुति-*मैं इस्तानबुल* हूं-भी लीक से थोड़ी हटकर मानी जा सकती है. नाटक मशहूर तुर्की उपन्यासकार ओरहान पामुक के जीवन से प्रेरित है. भूमंडलीकरण के दौर में इस नाटक के ज़रिए यह बताने की कोशिश की गई है कि कैसे भूमंडलीकरण के चलते ऐसी जटलिताएं पैदा हो रही हैं, जिससे विश्व प्रभावित हो रहा है. नाटक का आधार पामुक की रचनाओं के चुनिंदा अंशों का ताना-बाना है. नाटक का पहला हिस्सा पामुक के अपने जीवन की सच्ची घटनाओं पर आधारित है, तो दूसरा हिस्सा एक चित्रकार, उसके गुरु और चाचा की सुंदर बेटी शेकोर के प्रेम प्रसंग की दास्तां है. इस प्रेम प्रसंग के चक्कर में चित्रकार को 12 साल का निर्वासन झेलना पड़ता है और जब वह लौटता है तो देखता है कि उसका इस्तानबुल कितना बदल गया है. दरअसल इन दोनों नाटकों में ऐतिहासिकता दर्शाने की ज़रूरत थी, और निर्देशक ने इसके लिए मंचीय साज-सज्जा में वह पुट डाला है जिससे पूरे मंच से ऐतिहासिकता का बोध होता है. वहीं प्रसन्ना निर्देशित *उत्तर रामचरित*, रावण वध के बाद सीता के वन जाने की घटना के बाद राम-सीता के जीवन पर आधारित है. प्रसन्ना ने 1991 में पहली बार इस नाटक की प्रस्तुति की थी. तब बीजेपी ने राम की छवि को भुनाना शुरू किया था. उस वक़्त की प्रस्तुति में राजनीतिक तक़ाज़े का असर दिखा था, लेकिन इस बार की प्रस्तुति पूर्णतया पारिवारिक मूल्यों पर है जो विवाह, नैतिकता और प्रेम को लेकर कुछ बुनियादी सवाल खड़े करता है.

विजय तेंदुलकर के दो नाटक इस समारोह में मंचित हुए. *जात ही पूछो साधु की*, भारतीय भाषा में लिखा बेहतरीन हास्य नाटकों में एक है. इसका कथानक मौजूदा दौर के सिफ़ारिशी युग पर आधारित है. इसका केंद्रीय पात्र एमए तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने के बाद भी सिफ़ारिश का सहारा लेकर लेक्चरर बनता है. इससे पहले उसे अनगिनत बार इंकार का सामना करना पड़ता है. निर्देशक राजिंदर नाथ के मुताबिक एक साधरण कथानक के बावजूद यह नाटक हमारी व्यवस्था पर सर्वोत्तम कटाक्ष करने वाला है. वहीं *घासीराम कोतवाल* भी काफी चर्चित नाटकों में एक है. हिंदी में पहली बार इसकी प्रस्तुति 1973 में हुई थी. तबसे लेकर अब तक कई बार इसका मंचन हो चुका है और हर बार दर्शक इसका लुफ्त उठाए बिना नहीं रह पाते. बीतते समय के बावजूद *घासीराम कोतवाल* आज के हालात में ज़्यादा प्रासांगिक होता जा रहा है. *राम नाम सत्य* है, एचआईवी पीड़ितों के आश्रम की कहानी है जो संवेदनशील मन को झकझोरती है. नाटक में अभिनेताओं का अभिनय लाइलाज बीमारी के दर्द को मंच पर उतार देता है जहां हर पल यह अहसास कौंधता है कि यह नाटक मृत्यु के बारे में नहीं है बल्कि जीवन के बारे में है. दुर्भाग्य यह है कि इस नाटक के निर्देशक चेतन दत्तार का निधन महज 44 साल की उम्र में अगस्त 2008 में हो गया.

रंगमंडल के मुखिया सुरेश शर्मा के निर्देशन में *काफ़्का-एक अध्याय* भी लोगों का ध्यान खींचता है. इसमें काफ़्का की ज़िंदगी के ताने-बाने को निर्देशक ने ख़ूबसूरती से मंचित किया है. बहरहाल इस नाट्य समारोह की चर्चा प्रसन्ना के *आचार्य तारतूफ़* के जिक्र के बिना अधूरी रहेगी. *आचार्य तारतूफ़* मौजूदा समाज में धर्मगुरुओं के प्रति बढ़ती आस्था और उनके जीवन के स्याह पक्षों को उद्घाटित करने वाला नाटक है. पूरे नाटक में हास्य बोध के साथ व्यंग्य का भाव लक्षित होता है.

हालांकि रंगमंडल अपने 45 साल के सफ़र में पहली बार स्थापित कलाकारों की कमी से जूझ रहा है, पर नए कलाकार ख़ुद को स्थापित करने की जद्दोजहद में जुटे हैं. लिहाजा कोई भी प्रस्तुति उस स्तर को नहीं छू पाई है, जिसे मानक माना जाए.

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के अलावा श्रीराम सेंटर ऑफ आर्ट्स में जून के पहले सप्ताह में ग्रीष्मकालीन समारोह के नाम पर दो नाटकों का मंचन किया गया. इसमें रबजीता गोगोई निर्देशित विजय तेंदुलकर के प्रसिद्ध नाटक *कन्यादान* की दमदार प्रस्तुति देखने को मिली. घरेलू हिंसा, सांप्रदायकिता, यौन उत्पीड़न जैसी सामाजिक कुरीतियों पर मार्मिक नाटक लिखने के लिए मशहूर विजय तेंदुलकर ने 1983 में कन्यादान लिखा. यह नाटक कई मायनों में मध्य वर्ग की नैतिक दुहाइयों और यथार्थ से उपजे संघर्ष को परिभाषित करने वाला है. एक आदर्शवादी परिवार के प्रगतिशील नज़रिए का हश्र सामाजिक ताने-बाने पर चोट करने वाला है. इस नाटक ने लोगों को ख़ासा प्रभावित किया. चेतन दत्तार निर्देशित *आंख मिचौली* की प्रस्तुति भी सराही गई.

इन दो सांस्कृतिक केंद्रों से अलग अरविंद गौड़ ने अपनी संस्था-अस्मिता थियेटर समूह-के बैनर तले इंडिया हैबिटेट सेंटर और लोधी रोड में ग्रीष्मकालीन नाट्य समारोह आयोजित किया. इसमें *एक मामूली आदमी, कोर्ट मार्शल* और *फाइनल साल्यूशन* जैसे चर्चित नाटक शामिल थे. अरविंद काफी हद तक सामयिक मुद्दों पर बोल्ड नाटकों के ज़रिए अपनी पहचान मज़बूत करते जा रहे हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(21 जून से 28 जून तक)

मेष 21 मार्च से 20 अप्रैल

कुछ आदतें जल्द नहीं छूटतीं, लेकिन जितना जल्द छोड़ेंगे उतनी जल्दी ज़िंदगी पटरी पर लौटेगी. हालांकि अपने गुस्से को क़ाबू में रखें तो फ़ायदा रहेगा. साथी का सहयोग मिलता रहा है, अब बदले में कुछ करने का वक़्त आ गया है.

वृष 21 अप्रैल से 20 मई

आप कुछ रचनात्मक कर रहे हैं, जो आपको संतुष्टि दे रहा है. आप इस सप्ताह ख़ुश रहेंगे लेकिन इस ख़ुशी में अपने निकटजनों के स्वास्थ्य पर ध्यान देना न भूलें. व्यवसाय में आपके ख़र्च आपको कमज़ोर कर रहे हैं, लेकिन किसी संबंधी का सहयोग भी मिल रहा है.

मिथुन 21 मई से 20 जून

हड़बड़ी किसी भी काम को बिगाड़ देती है, इसलिए बिना सोच-विचार कुछ न करें. आपका व्यवहार लोगों को पसंद आ रहा है और इसका लाभ भी मिलेगा. सम्मान के रास्ते भी खुलेंगे. व्यावसायिक मामलों में आपके प्रयास सफल होंगे और लाभ दिलाएंगे.

कर्क 21 जून से 20 जुलाई

कहा जाता है कि सच वही बोलना चाहिए जो सुनने में अच्छा लगे. कुछ ऐसा ही ख़याल आपको इस सप्ताह रखना होगा. हालांकि इस सप्ताह बाक़ी चीज़ें आपके लिए आपके हिसाब से रुख़ कर रही हैं. प्रभावशाली लोगों का सहयोग बना रहेगा.

सिंह 21 जुलाई से 20 अगस्त

आप इस सप्ताह कई कार्यों में व्यस्त हैं, लेकिन अपने लिए भी समय निकाल सकेंगे. हां, मौसम में बदलाव से आपके स्वास्थ्य पर असर पड़ सकता है, इस पर ध्यान दें. घरवालों, विशेषकर आपके जीवन साथी का सहयोग आपके साथ रहेगा.

कन्या 21 अगस्त से 20 सितंबर

मौसम के हिसाब से अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दें. पार्टियों और मौज़-मस्ती तो ठीक है लेकिन खानपान पर ध्यान दें. पुराने विरोधी भी सक्रिय हो रहे हैं, अनावश्यक जोख़िम से बच कर रहें. परिवार पर ध्यान दें. व्यावसायिक मामलों में आप इस सप्ताह यात्रा कर सकते हैं.

तुला 21 सितंबर से 20 अक्तूबर

इस सप्ताह पारिवारिक छुट्टी का आनंद उठा सकते हैं. साथ ही कार्यक्षेत्र में नए आयाम खुल सकते हैं. अपने कार्यों से आप लोगों को प्रभावित कर रहे हैं जिसका सम्मानपूर्ण इनाम आपको इस हफ़्ते मिल सकता है. व्यावसायिक मामलों में कर्ज़ के प्रयासों में सफलता मिलेगी.

वृश्चिक 21 अक्तूबर से 20 नवंबर

किसी भी कार्य में सफलता बेहद ज़रूरी है, लेकिन अपने सम्मान की सुरक्षा उससे भी ज्यादा ज़रूरी है. काम में लगे रहना अच्छी बात है, लेकिन परिवार के प्रति दायित्वों को अनदेखा न करें. व्यावसायिक मामलों में आय के नए रास्ते खुल रहे हैं. नए बदलाव आएंगे.

धनु 21 नवंबर से 20 दिसंबर

इस सप्ताह आप नई ऊर्जा और लगन के साथ काम कर रहे हैं. इसका लाभ भी आपको मिलेगा. आपकी कार्यक्षमता और सम्मान में वृद्धि हो रही है. व्यावसायिक मामलों में यह हफ़्ता बड़ा लाभकारी है. नए अनुबंध मिल सकते हैं. आय और निवेश के नए रास्ते खुलेंगे.

मकर 21 दिसंबर से 20 जनवरी

मौसम के हिसाब से खानपान पर ध्यान दें. दूसरों के विवादित मामलों से दूर रहे, अत्यधिक विश्वास किसी के लिए भी कष्टकारी हो सकता है. किसी मूल्यवान वस्तु पाने की अभिलाषा पूरी होगी. व्यावसायिक मामलों में ख़र्चों पर ध्यान दें. सावधानी से लेन-देन करें.

कुंभ 21 जनवरी से 20 फरवरी

इस सप्ताह घरवालों और कार्यस्थल के सहयोगियों का सहयोग आपके साथ रहेगा. आप नई ऊर्जा और लगन के साथ काम करेंगे. सम्मान में वृद्धि की अभिलाषा पूरी होगी. व्यावसायिक मामलों में ख़र्चों पर रोक लगाएं तो आगे आपके लिए लाभकारी समय का योग है.

मीन 21 फरवरी से 20 मार्च

इस सप्ताह भारी व्यस्तता रहेगी. प्रतियोगी परीक्षा की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. प्रभावशाली लोगों से मेलजोल की स्थितियां बनेंगी. आपके काम से विरोधी पीछे छूट जाएंगे. व्यावसायिक मामलों में क़र्ज़ लेने का प्रयास सफल होगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

ग्लैमर की स्याह दुनिया

अनंत विजय

हाल के दिनों में भारतीय अंग्रेजी लेखकों की अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर काफी चर्चा हुई. चाहे वह काव्या विश्वनाथन पर दूसरे अंग्रेजी लेखकों के उपन्यास अंश उड़ाने पर उठा विवाद हो या किरण देसाई और अरविंद अडिगा का बुकर से सम्मानित होना. विक्रम चंद्रा के सेक्रेड गेम्स को भी विदेशों में ख़ासी लोकप्रियता मिली. पत्रकार सागरिका घोष की किताब ब्लाइंड फेथ को भी न केवल पाठकों ने पसंद किया, बल्कि आलोचकों ने भी कुंभ मेले को केंद्र में रखकर लिखी इस किताब को ख़ूब सराहा. इन सबके बीच युवा फिल्म निर्देशक राजश्री का पहला उपन्यास- ट्रस्ट मी (रूपा एंड कं.)- भी पाठकों को ख़ूब भाया. अगर प्रकाशक की मानें तो राजश्री की इस किताब की चंद महीनों में पच्चीस हज़ार से ज्यादा प्रतियां बिक गईं.राजश्री मूलत: फिल्मकार हैं, जिसने पुणे के फिल्म संस्थान से निर्देशक का कोर्स करने के बाद बॉलीवुड में क़दम रखा. राजश्री द्वारा लिखी और निर्देशित पहली फिल्म द रैबेल को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला. फिल्म राजश्री के लिए एक पैशन है. किताब पर लेखिका के परिचय में लिखा है कि वह बचपन से ही फिल्मों की दीवानी थी. शोले फिल्म की टिकट लेने के लिए वह पांच घंटे तक लाइन में खड़ी रही थीं.

राजश्री का दो सौ पन्नों का यह उपन्यास एक रोमांटिक कॉमेडी है. यह उपन्यास बॉलीवुड और विज्ञापन की ग्लैमरस दुनिया का विश्वसनीय, समृद्ध और संवेदना का प्रमाणिक सा लगता चित्र उकेरती है. इस उपन्यास की मुख्य पात्र पार्वती है, जो अपनी और अपने मां के सपने के साथ महाराष्ट्र के एक शहर अमरावती से मुंबई पहुंचती है. पार्वती को एक विज्ञापन एजेंसी में नौकरी मिलती है, जहां वह एक कैमरामैन करण पर फिदा हो जाती है. इश्क़ इतना गहरा जाता है कि दोनों के बीच की सारी दीवारें टूट जाती हैं. करण और पार्वती की आशिक़ी पर तब ब्रेक लगता है, जब पता चलता है कि वह गर्भवती है. मारे ख़ुशी के पार्वती के पांव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे होते हैं और वह हवा में उड़ती हुई अपने आशिक़ करण के पास पहुंचती है. उसकी बांहों में समा कर उसे यह ख़ुशख़बरी देती है. लेकिन करण न तो इस प्यार को लेकर गंभीर था और न ही उसके लिए इस रिश्ते की कोई भावनात्मक अहमियत थी. उसके लिए तो पार्वती एक नारी देह मात्र थी, जिसे वह भोग रहा था. इसलिए जब पार्वती ने उसे अपने गर्भवती होने की ख़ुशख़बरी दी तो उसने बहुत ही ठंढेपन से कहा कि-बच्चा गिरा दो. सन्न रह गई पार्वती ने लाख विरोध किया, डराया-धमकाया, आरज़ू-मिन्नतें कीं, लेकिन करण ने तो कुछ और ही तय कर रखा था. वही हुआ जो पुरुष ने चाहा. पहले गर्भवती बनाया फिर गर्भ गिरवा दिया. टूट गई पार्वती. शरीर से ज़्यादा टूटी आत्मा. एक कस्बाई मानसिकता की लड़की ने अपनी देह अपने प्रेमी को इसलिए सौंप दी कि उसे यक़ीन था अपने प्रेम पर, लेकिन उसका प्रेमी करण तो उसके साथ ऐश कर कर रहा था. ग्लैमर की दुनिया का एक घिनौना चेहरा. ऐसा नहीं है कि कहानी बस इतनी सी है. जब पार्वती गर्भपात करा कर अपने कार्यालय वापस पहुंचती है, तो विज्ञापन कंपनी का अधेड़ उम्र मालिक उससे सहानुभूति जताता है. उसे खाना खिलाने के बहाने होटल ले जाता है. सांत्वना देने के बहाने उसे हमबिस्तर होने का ऑफर भी दे डालता है. खाना खाते और बातें करते हुए बॉस का हाथ पार्वती के शरीर के भूगोल को नापने में लगा होता है. अचानक एक भेड़िए की मानिंद उस पर टूट पड़ता है और अपने अधरों से उसके होठों को पीसने लगता है. अचानक हुए इस आक्रमण का जब पार्वती विरोध नहीं कर पाती है तो दहाड़ मारकर रोने लग जाती है. किसी तरह पार्वती उस भेड़िए से और उस विज्ञापन एजेंसी से अपना पीछा छुड़ाती है.

इसके बाद वह विज्ञापन की दुनिया छोड़कर फिल्म की ग्लैमरस दुनिया में आ जाती है. फिल्म में सहायक

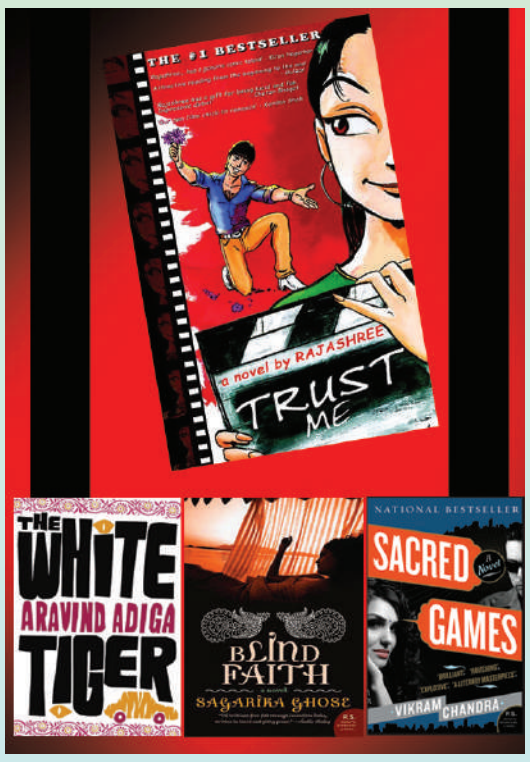

निर्देशक की नौकरी मिलते ही वह पार्वती से पारो हो जाती है. तमाम तरह के फिल्मी लटके-झटके के बीच फिल्म का सहकलाकार राहुल उसके क़रीब आने की कोशिश करता है और सफल भी होता है. दोनों को एक-दूसरे का साथ अच्छा लगने लगता है. साथ उठना-बैठना, एक-दूसरे के साथ बस स्टॉप पर जाना. इन दोनों की कहानी के साथ-साथ फिल्म के सेट पर घटने वाली तमाम घटनाएं- मसलन हीरो हीरोइन के बीच जादू की झप्पी, निर्देशक का नायिका के साथ नोक-झोंक, प्यार मनुहार आदि-समांतर रूप से चलती रहती है. पारो कि जिंदगी पटरी पर थी, राहुल से दोस्ती आगे बढ़ने लगी थी लेकिन जब भी राहुल प्यार से आगे बढ़कर देह तक पहुंचने की कोशिश करता है तो पारो उसकी इच्छा पर ब्रेक लगा देती है. उसके अर्धचेतन में करण का संबंध चल रहा होता है. अचानक एक दिन किसी वजह से पारो की मकान मालकिन उसे कमरा ख़ाली करने का अल्टीमेटम दे देती है. समय कम होने की वजह से पारो को कोई मकान या कमरा नहीं मिल पाता है तो वह थक हार कर राहुल के एक कमरे के फ्लैट में शिफ्ट हो जाती है. दोनों न सिर्फ़ कमरा शेयर करते हैं, बल्कि बिस्तर भी. रोमांस, चुंबन से बात आगे नहीं बढ़ने का एक समझौता सा है. एक दिन जब राहुल लक्ष्मणरेखा पार करना चाहता है तो पारो उसे रोक देती है. अमूमन चुप रहने वाला राहुल का गुस्सा फट पड़ता है और दोनों के बीच जमकर झगड़ा और गाली गलौज होती है. पारो उसका घर छोड़कर चली जाती है. राहुल करता है मनुहार और पारो करती है घर लौट आने का वादा. कुल मिलाकर अगर देखें तो ढाई सौ पन्नों का यह उपन्यास बेहद पठनीय है. संवाद में गालियों की अधिकता है. दो-तीन प्रसंगों में घटनाओं का चित्रण भी नैतिकतावादियों को नहीं भाएंगी, लेकिन हक़ीक़त तो यही है. हिंदी में भी फिल्म और विज्ञापन जगत की दुनिया पर कई उपन्यास आ चुके हैं. सुरेंद्र वर्मा का मुझे चांद चाहिए की नायिका यशोदा पांडे से वर्षा वशिष्ठ या सिलबिल बनने की कहानी लगभग यही है, लेकिन दोनों में जो बुनियादी फ़र्क़ है वह यह कि सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास की नायिका बेहद महात्वाकांक्षी है जो सारी परंपरागत मान्यताओं को रौंदती हुई अपने लक्ष्य तक पहुंचती है. वर्षा वशिष्ठ का संघर्ष जितना बाहरी और व्यवस्था विरोधी है, वहीं राजश्री के उपन्यास की नायिका अपने आप से या यों कहें कि निज से आंतरिक संघर्ष करते दिखती है. सुरेंद्र वर्मा की नायिका अनब्याही मां का दायित्व गर्व के साथ उठाती है, वहीं राजश्री के उपन्यास की नायिका यह साहस नहीं जुटा पाती है. विज्ञापन की दुनिया पर चित्रा मुद्‌गल ने भी एक ज़मीन अपनी लिखी है. लेकिन एक ज़मीन अपनी में नारी पात्र कुछ ज़्यादा ही विद्रोही है. वह कहती है- पुरुष से स्वतंत्र होना है तो सिंदूर पोछना होगा, बिछुए त्यागने होंगे, ये दासीत्व के प्रतीक चिह्न हैं. लेकिन इस तरह की क्रांति की बातें अस्सी के दशक में होती होंगी, आज तो सिंदूर, बिछुए और बिंदी नेपथ्य में चले गए हैं. केंद्र में है तो सिर्फ देह. लेकिन चित्रा मुद्‌गल अपने उपन्यास में कई लड़कियों- ममता, गौतमी, स्मिता आदि के माध्यम से अपनी बातें कहती चलती हैं, तो राजश्री के उपन्यास में भी कई खुले विचारों वाली युवतियां हैं. इन पात्रों को न तो पुरुषों से शारीरिक संबंध बनाने में कोई झिझक है और न ही उन्हें बदल डालने में. इस अर्थ में राजश्री के उपन्यास के पात्र समय के साथ आगे चलते हुए आधुनिक हो गए हैं. सुधीश पचौरी इसे उत्तर आधुनिक कहेंगे. कुल मिलाकर अगर देखें तो राजश्री ने अपने इस उपन्यास में मुंबई के महानगरीय परिवेश में फिल्म और विज्ञापन जगत के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, संघर्ष और काम संबंधों का सहजता से चित्रण किया है. इस उपन्यास की सधी हुई भाषा कथ्य के प्रवाह को रास्ता देती चलती है. अकारण नहीं है कि राजश्री का यह पहला ही उपन्यास पाठकों ने हाथों हाथ लिया.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जाति व्यवस्था कैसे जन्मी?

व्यालोक

सनातन धर्म का जो वर्तमान स्वरूप हम देखते हैं, जाति-व्यवस्था को जो निंदनीय स्वरूप हमारे जीवन में ज़हर घोल रहा है, उसकी शुरुआत कैसे हुई, यह एक रहस्य ही है. काफी मगजपच्ची के बावजूद इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि जाति-प्रथा कैसे, किनके द्वारा और क्यों अस्तित्व में आई.

ऋग्वेद में केवल तीन वर्णों का उल्लेख है. इसमें ब्रह्मन और क्षत्र शब्द तो आए हैं, लेकिन वैश्य या शूद्र शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है. वैदिक काल में भारतीय प्रजा के लिए हरेक जगह विश शब्द का इस्तेमाल हुआ है, जिसका अर्थ बसने वाला होता है. कालांतर में शायद यही वैश्य शब्द में बदल गया. हां, पुरुष सूक्त में एक बार राजन्य और एक ही बार शूद्र शब्द का इस्तेमाल हुआ है, लेकिन उसे तो विद्वान क्षेपक मानते हैं. सवाल फिर से वही उठता है कि आखिर जाति-प्रथा की शुरुआत कैसे हुई? इसके पीछे एक तर्क तो यह समझ में आता है कि जब भारत में आर्यों का आर्येतर जातियों से संपर्क हुआ तो समाज को एक व्यवस्था देने के लिए जातिगत सोपान बनाए. अचरज की बात यही रही कि बाद में वर्ण-व्यवस्था के अंदर से सैकड़ो जातियां बन गईं. विद्वानों का मत है कि सांस्कृतिक रूप से जो जातियां या लोग पिछड़े थे, उनको ही आर्यों ने शूद्र की संज्ञा दे दी. जाति का विभाजन मनु ने बिल्कुल कठोर कर दिया. वैदिक काल में तो यह व्यवस्था बेहद लचीली थी. यहां तक कि महाभारत में कर्ण का यह संवाद भी है कि वाष्ीक देश (आज का पंजाब) में ब्राह्मण ही शूद्र और नापित बनते हैं और इसका उल्टा भी होता है. ज़ाहिर है कि वैदिक काल में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में अतिक्रमण भी ख़ूब होता था. इसका उदाहरण हम पिछले अंक मेंही दे चुके हैं. आर्यों ने जाति-प्रथा का सहारा शायद इसी वजह से लिया कि उनको विविध संस्कृतियों के लोगों को समाज में उनकी सभ्यता के मुताबिक जगह देनी थी. जातिवाद के जरिए समाज में कई दीर्घाएं बनाई गईं, जो अलग संस्कृति और आचार के लोगों को सामाजिक संरचना में जगह मुहैया कराती थीं.

यहां द्रविड़ जाति के लोग थे, जो आचार-विचार और संस्कृति के स्तर पर बहुत ऊंचे थे. इसके अलावा नीग्रो और औष्ट्रिक जाति के भी लोग थे, जो अधिकतर जंगलों में या नागर जीवन से दूर रहा करते थे. इन लोगों की सभ्यता भी अविकसित थी. इनके अलावा आर्य तो थे ही, जो ख़ुद को सबसे ऊंचा समझते और मानते थे. इसके अलावा, बहुतेरे लोग ऐसे भी थे, जो इन जातियों के बीच परस्पर वैवाहिक संबंध से पैदा हुए थे. कुल मिलाकर उस समय के भारतवर्ष में विविधता ख़ूब थी. कुछ जातियां बेहद सभ्य थीं, तो कुछ अर्ध-सभ्य. कुछ जातियां ऐसी थीं, जो बिल्कुल अविकसित ही थीं. आर्यों ने जब समाज का एकीकरण शुरू किया होगा, तो उनके सामने इन सभी जातियों को उनका यथोचित स्थान देने की चुनौती रही होगी. इसी वजह से वर्णाश्रम का निर्माण किया गया और सभी जातियों को सामजिक पायदान में उनकी जगह दी गई. ऐसा हम अनुमान लगा सकते हैं.

जहां तक जाति का सवाल है, तो पढ़ाई-लिखाई करनेवाले लोग ब्राह्मण हो गए. क्षत्रिय तो राजा और शासक होते ही थे. वैश्यों का व्यापार पर एकाधिकार था, इसलिए जाति व्यवस्था में उनको बहुत अपमानित नहीं किया गया.

आज हम जो भी कुछ इस जाति-व्यवस्था में देखते हैं, वह साफ कर देता है कि जातियां केवल पेशों के आधार पर नहीं बनी हैं, बल्कि उनके पीछे सभ्यता और संस्कृति के महीन स्तर भी हैं. जो लोग संस्कृति के स्तर पर ऊंचे थे, उन्होंने महीन काम और लिखाई-पढ़ाई को अपना लिया. हालांकि, पुराने समय में जाति व्यवस्था इतनी संकीर्ण नहीं थी. दरअसल, आर्यों ने समाज के एकीकरण में इस हथियार का ख़ूब इस्तेमाल किया. जाति की प्रथा से भारत के आर्यीकरण का ध्येय भी पूरा होता था. जाति व्यवस्था की कमान ज़ाहिर तौर पर ब्राह्मणों के हाथ में थी और बिना उनकी सहमति के जाति का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था. हालांकि, जो लोग आर्यों के रस्मो-रिवाज और रहन-सहन को सीख लेते थे, उनको सामाजिक और जातीय तौर पर ऊंची जगह मिल जाती थी.

जाति व्यवस्था में निचला पायदान उन्हीं को मिला जो अखाद्य खाते थे और अपेय पीते थे. तथाकथित ऊंची जातियों से सात्विक जीवन बिताने की उम्मीद की जाती थी. ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म के उदय के बाद ही मांसाहरा छोड़ा और जिन जातियों और लोगों ने इसे फिर भी नहीं छोड़ा, उनको ही शूद्र कहा. हालांकि जातिगत संक्रमण दसवीं सदी यानी शहाबुद्दीन गोरी के समय तक इतनी रूढ़ नहीं हुई थी. जातियों के बदलने और उसके पीछे के कारणों पर चर्चा अगले अंक में

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

मुसलमान

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह अलग-अलग हालात इक़बाल और लेखक की ज़िंदगियों को अलग-अलग रास्तों पर ले गए. इसके आगे-पढ़िए इस अंक में...

अचानक वे ठठाकर हंस पड़े. मेरी आंखें फैल गईं.

बस चित्रपट्टी अपने पास रख लेते हुए उन्होंने पूछा, यह एक ही कार्टून लाए हो? मैंने सिर हिलाकर हां कहा और खड़ा हो गया. वे और कुछ कहें, इसके पहले मैं बाहर भी निकल गया था.

मेरा पहला तीर ठीक निशाने पर बैठा था. मेरा रोम-रोम झनझना उठा. आत्मविश्वास की स्थापना हुई. गर्व से मेरा सीना फूल गया था. फोर्ट मार्केट से टाइम्स ऑफ इंडिया कार्यालय पहुंचने में मुझे अधिक समय नहीं लगा.

वास्तव में घर से मैं दो कार्टून लेकर चला था, और दूसरा टाइम्स ऑफ इंडिया को देने का मन-ही-मन मैंने तय किया था. यह कार्टून मौन था यानी कि बिना शब्दों का.

इसमें एक जेबकतरा किसी व्यक्ति को उंगली के इशारे पर सूचनापट्टी दिखाता है- जेबकतरों से सावधान, और इस तरह उस व्यक्ति का ध्यान दूसरी तरफ़ घुमाकर वह अपने दूसरे हाथ से उसकी जेब हलकी कर देता है.

यह पॉकेट-कार्टून प्रकाशित होने के बाद इतना लोकप्रिय हुआ कि कई व्यंग्य चित्रकारों ने उसकी अलग-अलग ढंग से नकलें की थीं.

टाइम्स ऑफ इंडिया के विशाल भवन में प्रवेश करते समय मेरी चाल एक के बाद एक कई देशों पर विजय-पताका फहराते नेपोलियन बोनापार्ट जैसी थी. चित्रलेखा में अपना कार्टून स्वीकृत होने पर मैंने आधी दुनिया जीत ली थी, बाक़ी आधी टाइम्स ऑफ इंडिया में दूसरे कार्टून के स्वीकृत होने पर जीती गई.

यह दिन मेरे जीवन का अनोखा दिन था. पत्रकारिता के जगत में मैंने पहला क़दम रखा था. थोड़े महीनों में मैं इस क्षेत्र में दौड़ लगाने वाला था. साहित्य और कला-जगत में मैं मीलों का सफ़र तय करने वाला था.

सफलता के नशे में चूर मैं अपने घर न जाकर डॉ. चीनवाला के मकान की सीढ़ियां चढ़ गया. गर्व से मैंने उन्हें शुभ समाचार सुनाया. उनकी पत्नी रहमत मेरे लिए फ्रूट सलाद से छलकता हुआ प्याला ले आईं. देखने में वह स्वीट-डिश फलों के टुकड़ों से छलकती आइसक्रीम जैसी लग रही थी. मैंने वह प्यार सधन्यवाद स्वीकार किया. डॉ. चीनवाला ने व्यंग्य में कहा, हम जानते थे कि आज तुम कोई ख़ुशख़बरी ज़रूर लाओगे.

उसी दिन डॉ. चीनवाला ने जवाहरलाल नेहरू की तरह अपनी निजी पंचवर्षीय योजना की घोषणा की. उनकी इस योजना के तहत चित्रकार यूसुफ धाला को अपने चित्रों की दो प्रदर्शनियां करनी थीं, मुश्ताक़ जलीली की फिल्म की कम-से-कम एक कहानी बेचनी थी और मुझे जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में दाख़िला लेकर पांच साल का पाठ्यक्रम पूरा करना था. डॉ. चीनवाला ने अपनी उन्नति के लिए भी एक टारगेट निश्चित किया था.

आज मुझे सहज ही यह ख़याल आता है कि सूफ़ी को ऐसा माहौल मिला होता तो? यदि उसके जीवन में इन सज्जनों ने प्रवेश किया होता तो क्या उसने इन बुजुर्गों का मार्गदर्शन स्वीकारा होता? क्या उसकी जीवनधारा में कोई अंतर आया होता?

मैंने कहीं एक लेख पढ़ा था. उसमें वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया था कि गंदे नाले पर घर बनाकर रहने वाले किसी कंगाल की संतान को उठाकर किसी संपन्न परिवार में रख दिया जाए, उसे स्वस्थ वातावरण और उचित अवसर दिए जाएं, तो वह बच्चा बड़ा होकर जीवन के किसी भी क्षेत्र में टक्कर ले सकता है.

सूफ़ी कहता है, यह सब नसीब का खेल है. उसकी अपनी क़िस्मत अच्छी होती तो उसके दादा जुआरी न होते (दादा रुई का सट्टा खेलते थे), पिता तस्करी न करते और उसका जन्म भी मुंडागली में न हुआ होता.

सुख और दुख सूफ़ी के अपने हैं. न सुख में वह सुंदरियों का सहवास ढूंढता है, न दुख में शराब की बोतल. वह करोड़ों में खेलता हो, तब भी उसके चेहरे पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. उसकी गिरानी के दिन आते हैं, तब भी उसका रोयां नहीं हिलता. वह अपनी मस्ती में रहता है और उस मस्ती में जीना चाहता है.

इस तह जीने की कला उसने अनुभव से सीखी है. यह अनुभव उसके बचपन से जवानी तक पसरा है, पतन से उन्नति और उन्नति से पतन तक लंबा है, सीधे मार्ग और दो नंबर के मार्ग से नेकी की राह तक फैला है.

> **फेनी-काजू की एक बोतल इक़बाल को ग्यारह रुपये में पड़ती, जबकि उसका बाज़ार भाव चौदह रुपये था. अर्थात एक बोतल पर उसे तीन रुपये का मुनाफ़ा होता. कोडाक कंपनी के माल पर उसे एक बोतल पर पांच रुपये मिलते. सब मिलाकर तीन बोरियों (दो काजू-फेनी की और एक कोडाक कंपनी की) पर उसे क़रीब तीन सौ रुपये मिल जाते.**

इंस्पेक्टर भेसाड़िया ने उसे दो नंबर के रास्ते से हटा लेने के बजाय उसके लिए वही रास्ता आसान कर दिया. अब इक़बाल (बाल सूफ़ी) को किसी का डर नहीं था. कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता था. यल्ली गेट पुलिस स्टेशन को फोन लगाकर भेसाड़िया ने वहां के इंस्पेक्टर दाभोलकर को सूचना दे दी थी.

इसका पता आपको कैसे चला? सूफ़ी से मैंने पूछा.

नया काम शुरू करने से पहले मैं दाभोलकर साहब से मिला था. उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा और बैठने के लिए कुर्सी दी थी. इसके अलावा ज़ोर देकर उन्होंने मुझे निश्चिंत रहने के लिए कहा था.

एक बात अभी भी समझ में नहीं आती, मैंने फिर कहा-इंस्पेक्टर भेसाड़िया ने ऐसा क्यों किया? किसलिए उसने आपको सहयोग दिया?

आगे चलकर अपने फ़ायदे में वह मेरा इस्तेमाल कर सके, इसलिए .

कैसे?

हंसते हुए उसने प्रतिप्रश्न किया, क्या सब कुछ आज की बैठक में जान लेना है ?

मैं चुप हो गया.

उसने अपनी कहानी आगे बढ़ाई.

इक़बाल जिस समय ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ता था, उस समय बंबई-गोवा के बीच पैसेंजर बोटें चलती थीं. जो यात्री रेलमार्ग से यात्रा नहीं करना चाहते थे, उनके लिए ये लाभदायक भी थीं. तुलना में इनकी टिकटें सस्ती होती थीं. (कोंकण-सेवक ऐसा ही एक जहाज़ था)

ये जहाज़ सप्ताह में दो बार आते और घड़ियाल गोदी के घाट पर लंगर डालते. इसमें यात्रियों के साथ शराब भी आती. फेनी (नारियल से बनी शराब) तथा काजू वहां घर-घर में तैयार की जाती थी. गोवा का वह गृह-उद्योग बन गया था. इसके अतिरिक्त उस समय की वहां की मशहूर कोडाक कंपनी की ब्रांडी, व्हिस्की तथा रम की भी बंबई में बड़ी मांग थी.

भेसाड़िया के आदेश के अनुसार इक़बाल सिर्फ़ दो या तीन बोरियां ख़रीदता. एक-एक बोरी में फेनी तथा काजू की शराब की दो-दो दर्जन बोतलें होतीं तो कोडाक कंपनी की बोरी में तीन दर्जन बोतलें समा जातीं.

फेनी-काजू की एक बोतल इक़बाल को ग्यारह रुपये में पड़ती, जबकि उसका बाज़ार भाव चौदह रुपये था. अर्थात एक बोतल पर उसे तीन रुपये का मुनाफ़ा होता. कोडाक कंपनी के माल पर उसे एक बोतल पर पांच रुपये मिलते. सब मिलाकर तीन बोरियों (दो काजू-फेनी की और एक कोडाक कंपनी की) पर उसे क़रीब तीन सौ रुपये मिल जाते. इस तरह ख़र्चा निकाल कर उसे सप्ताह में छह सौ रुपये का मुनाफ़ा होता.

इक़बाल ख़ुश था, हालांकि इस काम में थोड़ी मुश्किल भी थी. जिस दिन जहाज़ लंगर डालता, उस दिन उसे स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ती. सुबह तड़के ही जाकर उसे गोदी में खड़ा हो जाना पड़ता. वहां से टैक्सी में माल लेकर शराब के अलग-अलग अड्डों पर पहुंचाना पड़ता. इसमें कभी पूरा दिन शहीद हो जाता, पर उसे इसकी चिंता नहीं थी. दूसरे दिन किसी विद्यार्थी से नोट्स लेकर वह चुके पाठ की नकल कर लेता था.

यह काम कुछ महीनों चला और उसके जौहर का पता उसके रिश्तेदारों को चल गया. उन्होंने दांतों तले उंगलियां दबा लीं. क्या यह सही हो सकता है ? हुसेन अली का बेटा और वह भी तस्करी के धंधे में? वह भी इस छोटी-सी उमर में?

जुम्मे की नमाज़ पढ़ने इक़बाल मस्ज़िद गया, तो उसे बू आ ही गई. जो बुजुर्ग पहले उसके सामने देखकर स्नेह से मुस्कुराहटें फैलाते थे, वे आज जैसे उसे पहचानते न हों, इस तरह मुंह फेरकर मस्ज़िद में दाख़िल हो गए और जिन्होंने उसके सामने देखा उनके चेहरों पर स्नेह नहीं था.

नमाज़ पूरी होने पर वहीं मस्ज़िद के सहन में एक के बाद एक आकर बुजुर्गों ने उसे घेर लिया. कुछ नमाज़ी घर जाने से पहले तमाशा देखने के लिए रुक गए.

क्या यह तुझे शोभा देता है ? एक बुजुर्ग ने उसे सबके बीच लताड़ना शुरू किया, अपने ख़ानदान की बदनामी हो रही है, इसका भी तुझे ख़याल है ?

इक़बाल चुपचाप सुनता रहा.

हमारी इज़्ज़त का फ़लूदा हो गया, दूसरे बुजुर्ग कह रहे थे, लोग आकर मुंह पर थूकते हैं.

तीसरे ने धमकी दी, कल से गोदी में गया तो याद रहे, तेरे घर आकर तेरी मां के सामने तेरी हज़ामत बना डालूंगा. हां.. किसी का लिहाज़ नहीं करूंगा.

(अगले अंक में जारी)

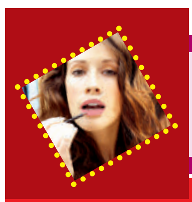

ख़तरनाक होता जा रहा है कंप्यूटर

अधिकतर लोग आजकल अपने दिन का बड़ा हिस्सा किसी कंप्यूटर स्क्रीन पर आंखें गड़ाए, की-बोर्ड पर उंगलियां घुमाते बिता देते हैं. इन तकनीक के पहियों पर सरपट दौड़ रही आज की इस दुनिया में कंप्यूटर के बिना काम तो नहीं चल सकता लेकिन इस कंप्यूटर के कम ख़तरे भी नहीं हैं. कंप्यूटर के अधिक इस्तेमाल से होने वाली बीमारियों की संख्या तेज़ी से बढ़ती जा रही है. आंखों में जलन, नज़र का कमज़ोर होना और कलाई का दर्द तो कंप्यूटर के कारण हो रही आम समस्याएं हैं लेकिन इसके अलावा भी कई ऐसी समस्याएं हैं जिनका पता आम लोगों को नहीं लग पाता. एक स्टडी रिपोर्ट के अनुसार इन बीमारियों और चोटों में बहुत तेज़ी से इज़ाफ़ा हुआ है. ये बीमारियां ऐसी हैं जिन पर हमारा ध्यान नहीं जाता और इसी वजह से इनका असर और ख़तरनाक होता जा रहा है. रिसर्च के अनुसार सिर्फ़ कंप्यूटर से जुड़ी बीमारियों में पिछले कुछ सालों में 732 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है. यह रिसर्च 1999 से 2006 के समय दौरान हुई है. इसी अवधि में कंप्यूटरों की बिक्री में 309 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ था. यानी ये बीमारियां कंप्यूटरों की बिक्री से क़रीब दोगुनी रफ़्तार से बढ़ी हैं. रिसर्च के अनुसार युवा और बच्चे ख़ास तौर से इन बीमारियों की चपेट में आए हैं. यह सभी जानकारियां अमेरिकन जर्नल ऑफ प्रेवेंटिव मेडिसीन के जुलाई अंक में दी गई हैं.

कंप्यूटर से जुड़ी बीमारियों में छोटी चोटों से लेकर दृष्टिशून्यता से लेकर बड़ी से बड़ी बीमारियां तक शामिल हैं. छोटे बच्चों को अधिकतर चोट से जुड़ी होती हैं. अमेरिकी नेशनल इलेक्ट्रॉनिक इंजरी सरविलैंस सिस्टम की रिपोर्ट बताती है कि सिर्फ़ अमेरिका में ही इस दौरान 78000 बच्चे कंप्यूटर के इस्तेमाल के दौरान चोटों का शिकार होते हैं. साथ ही कई बच्चे गंभीर बीमारियों का भी शिकार होते हैं. पूरे विश्व में यह आंकड़ा इसका दोगुना हो सकता है.

साथ ही पांच साल तक के बच्चे सबसे ज़्यादा चोट का शिकार होते हैं. इनमें अधिकतर छोटी मोटी चोटें जैसे तारों में उलझ कर गिरना आदि होते हैं. वहीं पांच साल से बड़े बच्चों में ज़्यादा गंभीर समस्याएं जैसे आंखों का नंबर बढ़ना और दब्बू और अकेलेपन का आदी होना जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी शामिल हैं. कंप्यूटर से जुड़ी आम समस्याओं जैसे कलाई के दर्द और आंख में कमज़ोरी पर तो काफी रिसर्च हो रही है लेकिन छोटी चोटों और मनोवैज्ञानिक समस्याओं के मामलों में ज़्यादा जागरूकता नहीं है और न ही ख़ास रिसर्च का काम हो रहा है. हालांकि इस स्टडी को जारी करने वाले विशेषज्ञों को लगता है कि जिस तरह से कंप्यूटर अब घरों में जगह बनाता जा रहा है, उसके बाद इस तरह के उपकरणों से होने वाली आम समस्याओं और उसके उपायों के लिए जनता को जागरूक करना ज़रूरी है. स्टडी में इस बात पर भी दुख जताया गया है कि कंप्यूटरों के फैलाव और विस्तार के लिए तो सरकारों की तरफ़ से कई उपाय किए गए हैं, लेकिन इनसे होने वाली समस्याओं को रोकने के लिए कोई उपाय नहीं लाए गए हैं.

इस मामले को गंभीरता से लेने के साथ इस बात को समझने की भी ज़रूरत है कि यह एक बड़ी समस्या है. साथ ही युवा पीढ़ी को भी इस मामले में पहल करनी होगी क्योंकि कंप्यूटर की सबसे बड़ी उपभोक्ता होने के नाते वह इन बीमारियों का सबसे बड़ा शिकार भी बनती है.

खेतों में रहेगा इलेक्ट्रॉनिक चौकीदार

खेतों में खड़ी फ़सल को तरह-तरह की चिड़िया और जानवरों से भारी नुकसान होता है. ऐसे में इन्हें भगाने को खेतों में पुतले को खड़ा किए जाने लगा, लेकिन धीरे-धीरे जानवर और पक्षी भी समझ गए कि यह नक़ली पुतला होता है, जिसका मक़सद उन्हें डराना होता है. लिहाजा, उन्होंने डरना छोड़ दिया. बिना आवाज़ लगाए अब ये भागने को तैयार नहीं होते, ऐसे में किसानों को भी बड़ा नुकसान होता है. दूसरे, किसानों के लिए चौबीसों घंटे निगरानी करना भी संभव नहीं है. ऐसे किसानों की मदद में आगे आई है भारत की ही एक कंपनी. उसने इस समस्या से निपटने के लिए एक यंत्र बनाया है, जिसकी ख़ासियत यह है कि इससे जानवरों और पक्षियों को खेतों से दूर रखा जा सकता है. पुणे में स्थित फ्यूचूरा इलेक्ट्रॉडिजायनर्स ने ईबीयू-इको और डूलक्स नाम से दो यंत्रों को बाज़ार में उतारा है. इन यंत्रों से ख़ास तरह की आवाज़ें निकलती हैं जिनसे जानवरों और पक्षियों को डराया जा सकता है और खेतों से दूर रखा जा सकता है. इनमें से निकलने वाली आवाज़ को एक टाइमर की मदद से नियंत्रित किया जा सकता है, जिसमें दो आवाज़ों के बीच का अंतर तय किया जा सकता है (2 मिनट से 2 घंटे तक) और आवाज़ की अवधि भी नियंत्रित की जा सकती है (5 सेकेंड से 5 मिनट). साथ ही ईबीयू में अलग-अलग मोड की व्यवस्था है. यानी जानवरों, पक्षियों और दोनों के लिए एक साथ आवाज़ सेट की जा सके.

हालांकि ईबीयू-इको मशीन से अधिकतर जानवर और पक्षी दूर भगाए जा सकते हैं लेकिन बंदरों और तोते से परेशान खेतों में यह कारगर साबित नहीं हो सकता. इसके लिए डूलक्स बनाया गया है जो कि ईबीयू-इको का विकसित रूप है. हालांकि अभी डूलक्स का बाज़ार में आना बाक़ी है, क्योंकि इस यंत्र का पूरा परीक्षण अभी होना है.

ज़ाहिर है, इस यंत्र के ज़रिए खेतों को सुरक्षित रखा जा सकता है. उम्मीद है कि यह नए तरह का रखवाला किसानों के लिए बड़े काम का होगा और किसान बिना डर के अपनी फ़सलों को खेतों में लहलहाते देखेंगे. वैसे सरकार को भी इस तरह की योजना का साथ देना चाहिए. भारत में चिड़िया और जानवरों से फ़सलों को होने वाला नुकसान काफी बड़ा है. अगर इस समस्या से निपटा जा सके तो यह देश के फ़सल उत्पादन और किसानों के हालात दोनों के लिए ही कारगर साबित होगा. भारत के खेतों में ही नहीं इस तरह के आविष्कारों के लिए बाहर के बाज़ारों में भी मांग है. यानी यह इलेक्ट्रॉनिक चौकीदार बड़े काम का है.

बिन छतरी के दिखेगा डीटीएच

अभी अपने मनपसंद कार्यक्रम देखने के लिए हमें-आपको न जाने कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं. पहले टीवी ख़रीदें फिर डीटीएच का पूरा सिस्टम, यानी सेट-टॉप बॉक्स, एंटेना और भी क्या-क्या. लेकिन अब इन सबसे मुक्ति के रास्ते निकल आए हैं. भारत की सबसे बड़ी स्वदेशी इलेक्ट्रॉनिक कंपनी वीडियोकॉन ने अब ऐसा टीवी बाज़ार में उतारा है जिसमें इतनी मशक्कत करनी ही नहीं पड़ेगी. इस टीवी के अंदर ही एक इनबिल्ट सेट-टॉप बॉक्स होगा. इस टीवी को ख़रीदने के बाद अलग से सेट-टॉप बॉक्स ख़रीदने की कोई ज़रूरत ही नहीं रह जाएगी. साथ ही अन्य डायरेक्ट टू होम सेवाओं की तरह इसमें भी सभी सुविधाएं मौजूद होंगी. डीटीएच का यह सारा सिस्टम वीडियोकॉन की सहयोगी कंपनी भारत बिज़नेस चैनल लिमिटेड (बीबीसीएल) संभालेगी. इनबिल्ट सेट-टॉप बॉक्स वाले इस टीवी की क़ीमत तो इसके फीचर्स से भी ज़्यादा हैरान करने वाली है. कंपनी के अनुसार इसकी क़ीमत महज़ 8,000 रुपये से शुरू होगी. हाल के दिनों में डायरेक्ट टू होम यानी डीटीएच के बाज़ार में तेज़ी आ गई है. जी के डिश टीवी, टाटा के टाटा स्काई, एयरटेल के डिजीटल टीवी और डीडी के डीडी डायरेक्ट प्लस के बाद अब इस बाज़ार में रिलायंस और वीडियोकॉन के उतरने से प्रतियोगिता और तगड़ी होने वाली है. ऐसे में वीडियोकॉन का यह डीटीएच टीवी इसमें बाज़ी मार सकता है. साथ ही वीडियोकॉन ने एक और काम का प्रोडक्ट बाज़ार में उतारने की योजना बनाई है. वह ऐसे डीवीडी प्लेयर बाज़ार में ला रही है जो सीधे सैटेलाइट से संकेत ले सकेंगे. इस तरह इनके ज़रिए अब सीधे सैटेलाइट सिग्नलों के माध्यम से फिल्मों का मज़ा लिया जा सकेगा. यानी बिना डिस्क के चलेगा डिस्क प्लेयर. इसकी क़ीमत 4000 रुपये के आसपास रहने की उम्मीद है.

सामने होंगी 6डी फिल्में

आपके साथ ऐसा अक्सर हुआ होगा जब किसी फिल्म का कोई इमोशनल सीन देखते-देखते आंखें नम हो जाती होंगी या कभी आप को किसी सीन ने ख़ूब हंसाया होगा, लेकिन सोचिए अगर ऐसा हो कि आप फिल्म में चल रहे दृश्य में हो रही बारिश को महसूस कर सकें. उसकी आसपास की मिट्टी की गंध का अहसास कर पाएं. कैसा लगेगा अगर आप दृश्य में बहती हवा के झोंके को अपनी त्वचा पर महसूस कर सकें. यह कोई कोरी कल्पना नहीं है. सिनेमा तकनीक के अगले दौर में दर्शक अब 6डी फिल्मों का लुत्फ़ उठा पाएंगे. एक ब्रिटिश कंपनी ने इसके लिए रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट में पहले 6डी या छह आयामी सिनेमाघर का निर्माण किया है.

अभी मौजूद 3डी यानी त्रिआयामी तकनीक में दर्शक फिल्म के तीनों आयामों यानी लंबाई, चौड़ाई और गहराई को ही देख पाते हैं. लेकिन 6डी फिल्मों में इन त्रिआयामी फिल्मों को पर्यावरणीय तत्वों जैसे बारिश, हवा और गंध से भी जोड़ दिया जाएगा. साथ ही सिनेमाघर में कुर्सियां भी इस तरह से गति में रहेंगी जिससे वास्तविकता का अहसास बना रहे.

धूप से चलेगा आपका मोबाइल

मोबाइल यूजर्स के लिए अच्छी ख़बर है. अब मोबाइल में बार-बार बैटरी चार्ज करने की झंझट से छुटकारा मिल जाएगा. अब न तो बिजली की मान-मनौव्वल करनी पड़ेगी न ही चार्जर न होने पर चार्जर ढूंढ़ने की मशक्कत से भी छुटकारा मिल जाएगा. आपका मोबाइल अब बस थोड़ी सी सूरज की रोशनी से चार्ज हो जाएगा. सैमसंग ने दुनिया का पहला सौर ऊर्जा से चार्ज होने वाला मोबाइल फोन लांच किया है. भारत में यह फोन सैमसंग सोलर गुरू के नाम से बाज़ार में उतारा गया है. यह मोबाइल सूरज की रोशनी से अपनी बैटरी चार्ज करने में सक्षम है. भारत के दूरदराज की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर बनाए गए इस मोबाइल की डिज़ाइनिंग भी भारत में ही की गई है. कंपनी का कहना है कि वह जल्द ही इसका पूरा उत्पादन भी भारत में ही करेगी. फिलहाल तो यह मोबाइल कोरिया से भारत में लाया जाएगा. सैमसंग सोलर गुरू में फोन को एक घंटे के सोलर चार्ज से 5 से 10 मिनट तक के टॉकटाइम के लिए चार्ज किया जा सकता है.

एक बार पूरी तरह से चार्ज करने के लिए मोबाइल को 40 घंटे तक की सौर ऊर्जा की ज़रूरत होगी. इस फोन से भारत के दूरदराज के इलाक़ों में फोन इस्तेमाल करने वालों को काफी मदद मिल जाएगी. जहां बिजली की सप्लाई अनियमित है, या नहीं है वहां के उपभोक्ताओं के लिए यह बहुत काम का साबित हो सकता है.

भारतीय बाज़ार को देखते हुए इसकी क़ीमत भी कम रखी गई है. इस फोन की क़ीमत 2799 रुपये रखे जाने की संभावना है. अब इतने में यह फ़ायदे का सौदा ही तो हुआ.

ख़ूबसूरती के ख़ूबसूरत उपाय

केवल चेहरे पर क्रीम-पाउडर से लीपापोती करने का नाम मेकअप नहीं होता. मेकअप वह है जिसमें सभी कॉस्मेटिक्स का प्रयोग सही तरीक़े से चेहरे पर किया जाए तथा जिससे आपकी छुपी ख़ूबसूरती बाहर नज़र आए. ऐसे ही मेक-ओवर करके चेहरे को परिस्थिति के अनुसार सजा-संवार सकते है. आजकल कई कॉस्मेटिक कंपनियों जैसे स्ट्रीट वेअर के मेकओवर रेंज आ रहे हैं जिनका इस्तेमाल कर आप अपने सौंदर्य में चार-चांद लगा सकते है. आपकी सुंदरता को निखारने के लिए पेश है कुछ मेक-ओवर टिप्स....

- मेकअप करने से पहले अपने चेहरे पर जमे धूल के आवरण को रूई के फाहे में मास्चराइज़र लगाकर साफ करें, फिर चेहरे पर क्लीजिंग करें.
- अगर आपका रंग साफ है तो फाउंडेशन का प्रयोग न करें. अगर आप फाउंडेशन लगाना चाहती हैं तो उसमें एसट्रिंजर की एक या दो बूंदें पानी के साथ डालकर उसे पानी के साथ हल्का रंग देकर लगा सकती हैं.
- हमेशा याद रहे कि चेहरे पर अपनी त्वचा के रंग से मिलता-जुलता या एक शेड हल्का फाउंडेशन लगाएं. फाउंडेशन के बाद चेहरे पर पाउडर या कॉम्पेक्ट लगाएं.
- कॉम्पेक्ट को हमेशा चेहरे के साथ-साथ गर्दन पर अवश्य लगाएं ताकि इनका रंग भी मेल खाता हुआ लगे.
- पाउडर लगाने के बाद गीले स्पंज से चेहरे पर धीरे-धीरे थपथपाएं ताकि पाउडर अधिक समय तक रहे और आपका मेकअप सही रहे.
- ध्यान रहें कभी भी आंखों के नीचे ज़्यादा पाउडर न लगाएं. आंखों को बड़ा दिखाने व हाईलाइट करने के लिए आई लाइनर, मस्कारा व काजल का प्रयोग करें. आंखों पर शेडो ज़रूर लगाएं.
- आंखों के आस-पास डार्क सर्कल हो तो इन पर अपनी त्वचा के रंग का फाउंडेशन हल्के हाथों से लगाएं. आई शेडो हमेशा भूरा या ग्रे कलर का लगाएं. जिससे आंखें और भी अधिक अच्छी लगेंगी.
- गालों को हाईलाइट करने के बाद हल्का गुलाबी ब्लशर लगाएं.
- होठों को ख़ूबसूरत दिखाने के लिए लिप लाईनर व ग्लॉसी लुक देने के लिए लिप ग्लॉस का प्रयोग करें.
- होठों पर लिपस्टिक लगाने के लिए अपने रंग के अनुसार लिपस्टिक का चयन करें.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

फोटो–पीटीआई

धोनी के फेर में जडेजा की जान मत लीजिए

भारत ट्वेंटी–20 विश्व कप से बाहर हो गया. वह वर्ल्ड चैंपियन होने का ख़िताब नहीं बचा पाया. भारत जैसे भावुक देश में इससे बड़ा अपराध हो ही नहीं सकता. कप्तान धोनी देशवासियों से लाख माफी मांग लें, लोग उन्हें गरियाएंगे ही. इसलिए नहीं कि वर्ल्ड कप में उनके नेतृत्व में टीम इंडिया ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया. इसलिए कि वह अब तक सफल जो होते रहे थे. इस देश में इतना सफल भी कोई होता है क्या? यहां ख़ुशी किसी की जीत में कम होती है, नायकों के पतन में ज़्यादा. शिखर और पतन के दौरान अमिताभ बच्चन के प्रति व्यवहार को ज़रा याद कीजिए. धोनी क्या चीज़ हैं? और फिर रवींद्र जडेजा? बेचारे जोगेंद्र शर्मा नहीं बन पाए! पिछले वर्ल्ड कप (2007) में फाइनल के उस आख़िरी ओवर को कोई भूल सकता है, जब शर्मा ने पाकिस्तान का अंतिम विकेट निकाल कर भारत को जिता दिया था. उन्होंने वह ओवर तब फेंका था, जब हरभजन सिंह ने मना कर दिया था. धोनी का दांव था, चल गया. जो जोगेंद्र शर्मा रणजी और जोनल टीमों में कभी अपना स्थान पक्का नहीं कर सके, वह उस आख़िरी ओवर की बदौलत लगातार दो साल आईपीएल खेल कर मालामाल हो गए. जोगेंद्र शर्मा की ज़िंदगी का वह सबसे बड़ा टूर्नामेंट था और रवींद्र जडेजा के लिए भी इस बार का वर्ल्ड कप करियर का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव. लेकिन दोनों का हश्र देखिए! धोनी का क्या है, वह तब भी कप्तान थे, आज भी हैं और आगे भी रहेंगे.

इसमें कोई दो राय नहीं कि इस वर्ल्ड कप में बतौर कप्तान धोनी विफल रहे. पूरी टीम हमेशा बग़ैर किसी योजना के खेलते दिखी. धोनी की कप्तानी उस तरह दिख रही थी, जैसी पीटरसन ने आईपीएल के दौरान बेंगलुरू की टीम के लिए की थी. हालांकि यह हार किसी बड़े आश्चर्य की तरह नहीं आई है. काग़ज़ पर भले ही भारत को इस बार भी विश्व कप का दावेदार बताया जा रहा था, लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त कुछ और ही थी. तभी तो रवि शास्त्री जैसे दिग्गज ने पहले ही कह दिया था कि जीत के लिए भारत को किसी चमत्कार की ज़रूरत होगी. कोई चमत्कार नहीं हुआ. रवि शास्त्री सही साबित हुए. वैसे भी उनकी तरह तर्कों के आधार पर जो भी सोचता, वह ऐसा ही कहता. इसलिए कि टीम आईपीएल खेल कर सीधे वर्ल्ड कप खेलने पहुंच गई थी. हर खिलाड़ी बेहद थका ही नहीं था, एक–दूसरे के प्रति प्रतिद्वंद्विता की भावना से उबर भी नहीं सका था. यही कारण था कि किसी भी मैच में टीम भावना दिखी ही नहीं. ज़रा याद कीजिए इस वर्ल्ड कप में बांग्लादेश के साथ खेले गए पहले मैच को. उस बांग्लादेश से पार पाने में भारत को एड़ी–चोटी का ज़ोर लगाना पड़ गया था, जिसे आयरलैंड ने बाहर का रास्ता दिखा दिया. यानी उसी मैच में भविष्य का अंदाजा लग गया था.

फिर भी, क्रिकेट प्रेमियों को उस समय अधिक निराशा हुई, जब मेजबान इंग्लैंड ने भारत को हराकर सेमीफाइनल में पहुंचने से रोक दिया. हैं. मैच के बाद हंसी मज़ाक करते अपने क्रिकेटरों ने घाव पर नमक छिड़कने का काम किया. यह ठीक है कि धोनी ने हमें सफलता नहीं दिलाई, पर क्या पूरी टीम ने ही ऐसी कोई कोशिश दिखाई. क्रिकेट हमेशा टीम गेम रहा है. एक–दो खिलाड़ी के बल पर कोई टूर्नामेंट कतई जीता नहीं जा सकता.

यहां सवाल टीम इंडिया से अधिक बीसीसीआई को लेकर उठना चाहिए था, जो कोई उठा नहीं रहा. जब उसे वर्ल्ड कप के आयोजन के बारे में पता था, तब आईपीएल को ऐन उससे पहले क्यों रखा? भारतीय खिलाड़ी पिछले दो सालों से लगातार खेल रहे थे और इसकी झलक उनके खे ल में साफ दिखी. लड़खड़ाती बल्लेबाज़ी, दिशाहीन गेंदबाज़ी और सबसे बढ़कर ढीले क्षेत्ररक्षण ने भारत की लुटिया डुबो दी. अहम मौके पर खिलाड़ी चोट के शिकार होते रहे. धोनी कैप्टन कूल की अपनी छवि से दूर नज़र आए. सवाल है कि कल के नायक से आज खलनायक बने धोनी अगला कोई टूर्नामेंट जीत कर फिर नायक बन सकते हैं, लेकिन एकतरफा आलोचनाओं से नवोदित रवींद्र जडेजा का जो आत्मविश्वास गिरेगा, क्या उसे दोबारा पाना आसान होगा?

नहीं चले स्टारों के टोटके...

पिछली बार भारत के विश्व कप फाइनल को देखने सुपर स्टार शाहरुख़ ख़ान भी पहुंचे थे. भारत ने वह मैच जीता और शाहरुख़ टीम के लकी मास्कॉट साबित हुए. इस बार भी भारत के मैचों का आनंद उठाने के लिए कई बड़ी हस्तियां पहुंची थीं. फिल्मस्टारों में दीपिका पादुकोण अपनी फिल्म लव आजकल के प्रमोशन के लिए पहुंची थीं तो मास्टर ब्लास्टर सचिन तेंदुलकर भी टीम का हौसला बढ़ाने पहुंचे थे. भाजपा नेता और दिल्ली क्रिकेट संघ के अध्यक्ष अरुण जेटली भी अपनी चुनावी हार का ग़म भुलाने के लिए वहां मैच देखने को मौजूद थे. हालांकि इन सब का वहां रहना भारतीय टीम को हार से नहीं बचा सका. यानी स्टारों की उपस्थिति का टोटका फेल ही रहा.

फुटबॉल की दुनिया का सबसे महंगा सौदा

सपने जल्दी सच नहीं होते. लेकिन जब ऐसा होता है कि तो अचानक यक़ीन करना भी मुश्किल हो जाता है. ऐसा ही कुछ अभी दुनिया भर के फुटबॉल प्रेमियों के साथ हुआ है. कुछ समय पहले तक यह बात किसी भी फुटबॉल प्रेमी के लिए सपने जैसे ही थी कि वर्तमान में दुनिया के दो सबसे बड़े खिलाड़ी एक साथ खेलते नज़र आएंगे, लेकिन अब यह सपना भी सच होने जा रहा है. यह सपना ऐसा है जो खेल प्रेमियों के दिलों से लेकर खेल के मैदान तक राज करने वाला है.

रियाल मैड्रिड के लिए ऐसे सपने सच करना कोई नई बात नहीं है. दुनिया के सबसे अमीर क्लबों में एक रियाल मैड्रिड महंगे सौदों को लिए जाना जाता है. रियाल ने 80 मिलियन पाउंड यानी करीब 520 करोड़ रुपये में क्रिश्चियानो रोनाल्डो को मैनचेस्टर यूनाइटेड और 60 मिलियन पाउंड (करीब 400 करोड़ रुपये) में एसी मिलान से काका को ख़रीदा है.

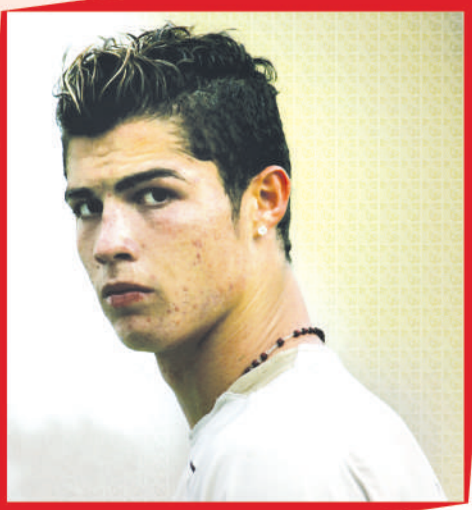

दुनिया के सबसे बड़े खिलाड़ी काका और क्रिश्चियानो रोनाल्डो अब एक साथ खेलने जा रहे हैं. यह सपना सच होगा स्पेन की घरेलू लीग प्रीमेरा लीगा में. वहां दोनों खिलाड़ी स्पेनिश क्लब रियाल मैड्रिड के लिए खेलते दिखेंगे. रोनाल्डो और काका फ़िलहाल फुटबॉल दुनिया के सबसे बड़े खिलाड़ियों में हैं. पिछले कुछ सालों से पुर्तगाल के क्रिश्चियानो रोनाल्डो और ब्राजील के काका ने फुटबॉल की दुनिया पर राज किया है. इन दोनों और लॉयनल मेसी के बीच यह जंग चलती रही है कि इनमें से सबसे अच्छा खिलाड़ी कौन है. पिछले कुछ सालों में अपने–अपने क्लबों के लिए उन्होंने शानदार खेल दिखाया है और अपने टीमों को शिखर तक पहुंचाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है. पिछले दो सालों के सर्वश्रेष्ठ यूरोपियन खिलाड़ी का ख़िताब इन दोनों के ही पास रहा है. अब काका और रोनाल्डो के एक साथ रियाल मैड्रिड के लिए खेलने से क्लब फुटबॉल में एक नया जबरदस्त बदलाव देखने को मिलेगा. हालांकि रियाल मैड्रिड के लिए ऐसे सपने सच करना कोई नई बात नहीं है. दुनिया के सबसे अमीर क्लबों में एक रियाल मैड्रिड महंगे सौदों को लिए जाना जाता है. रियाल ने 80 मिलियन पाउंड यानी करीब 520 करोड़ रुपये में क्रिश्चियानो रोनाल्डो को मैनचेस्टर यूनाइटेड और 60 मिलियन पाउंड (करीब 400 करोड़ रुपये) में एसी मिलान से काका को ख़रीदा है. रोनाल्डो को ख़रीदने का सौदा क्लब फुटबॉल के इतिहास का सबसे बड़ा सौदा है. रियाल ने काका को ख़रीदकर बनाए गए अपने रिकार्ड को ही तोड़ा है. हालांकि यह पहला मौका नहीं है जब दुनिया के सबसे बड़े फुटबॉलर एक साथ रियाल के लिए खेल रहे हों, इससे पहले भी रियाल में स्टार खिलाड़ियों का जमावड़ा लगता रहा है. दो सीजन पहले रियाल मैड्रिड की टीम में डेविड बेकहम (इंग्लैंड), रोनाल्डो (ब्राज़ील), जिनेदिन जिदान (फ्रांस), राउल गोंजालेज (स्पेन), राबर्टो कार्लोस (ब्राज़ील) जैसे खिलाड़ी एक साथ खेले थे. मज़े की बात तो यह रही कि उस साल रियाल कोई भी प्रतियोगिता जीत नहीं पाया था. हालांकि इस बार तो क्लब ने ख़र्चे के सारे रिकार्ड तोड़ दिए हैं, अब देखना है काका और रोनाल्डो की जोड़ी क्या रंग दिखाती है. रोनाल्डो और काका के लिए तो उनके सपने के सच होने जैसा है. क्लब फुटबॉल में रियाल के लिए खेलना एक सम्मान माना जाता है. रोनाल्डो तो बेकहम के नक़्शेक़दम पर चल रहे हैं जो ख़ुद एक रिकार्ड डील में मैनचेस्टर से रियाल गए थे. रोनाल्डो के लिए यह बात भी मायने रखती है कि उनके आदर्श पुर्तगाली फुटबॉलर लुईस फिगो भी रियाल के लिए खेल चुके हैं. उधर काका भी कई बार

रियाल के लिए खेलने को अपना सपना बता चुके हैं. हालांकि इन दोनों के रियाल चले जाने से क्लब फुटबॉल के समीकरणों में ज़ोरदार फेरबदल हो सकता है. जहां मैनचेस्टर और मिलान के लिए रोनाल्डो और काका की कमी को भरना आसान नहीं होगा, वहीं रियाल के लिए अपनी ख्याति दोबारा हासिल करने का सुनहरा मौका होगा.

समीकरण और नफे–नुकसान जो भी हों, फुटबॉल प्रशंसकों के लिए तो यह सौदे सोने पर सुहागा लेकर आए हैं. काका और रोनाल्डो को एक साथ खेलते देखना किसी भी प्रशंसक के लिए रोमांच से भरा रहेगा. साथ ही इनकी सीधी टक्कर अब बार्सिलोना के लिए प्रीमेरा लीगा खेलने वाले मेसी से रहेगी. यानी जब जुलाई से क्लब फुटबॉल का नया अध्याय शुरू होगा तो उम्मीदें कम नहीं होंगी.

ख़त्म हो गया बंगाल का वर्चस्व

फोटो–पीटीआई

संतोष ट्रॉफी में गोवा की जीत ने भारतीय फुटबॉल में एक नए दौर का सबूत दे दिया है. इस जीत ने साबित कर दिया है कि भारतीय फुटबॉल की जान अब गोवा में बसती है. सालों से भारतीय फुटबॉल के मक्का रहे बंगाल की हार ने बंगाल के क्लबों और खिलाड़ियों को सोचने पर मज़बूर कर ही दिया है, साथ ही भारत के फुटबॉल प्रेमियों के मन में भी यह सवाल खड़ा कर दिया है कि क्या भारतीय फुटबॉल में कोलकाता के वर्चस्व का दौर ख़त्म हो गया है? संतोष ट्रॉफी में गोवा की बंगाल पर भारी जीत से तो ऐसा ही कुछ लगता है. इसी साल गोअन क्लब चर्चिल ब्रदर्स ने क्लब फुटबॉल की *आई–लीग* जीतकर प्रदेश का झंडा बुलंद किया था. अब संतोष ट्रॉफी में गोवा की जीत से भारतीय फुटबॉल नक़्शे से इस साल बंगाल का सूपड़ा ही साफ हो गया. बरसों से भारतीय फुटबॉल पर राज करने वाले बंगाल के क्लबों को अब दोबारा सोचना पड़ेगा.

सालों से भारतीय फुटबॉल के मक्का रहे बंगाल की हार ने बंगाल के क्लबों और खिलाड़ियों को सोचने पर मज़बूर कर ही दिया है, साथ ही भारत के फुटबॉल प्रेमियों के मन में भी यह सवाल खड़ा कर दिया है कि क्या भारतीय फुटबॉल में कोलकाता के वर्चस्व का दौर ख़त्म हो गया है? संतोष ट्रॉफी में गोवा की बंगाल पर भारी जीत से तो ऐसा ही कुछ लगता है.

हालांकि इस जीत से गोवा की टीम को बड़ी संतुष्टि मिली होगी. यह गोवा के फुटबॉल एसोसिएशन का स्वर्ण जयंती साल है और गोवा के प्रभुत्व से उसे एक बेहतरीन तोहफा भी मिल गया है. साथ ही इस जीत ने उस हार की याद धुंधली कर दी होगी जब आज से दस साल पहले गोवा को बंगाल ने संतोष ट्रॉफी के फाइनल में 5–0 से हराया था. इस बार गोवा ने इसी अंतर से बंगाल को पछाड़ कर उस हार का बदला ले लिया है और साथ ही यह भी साबित कर दिया है कि भारत के घरेलू फुटबॉल लीग में समीकरणों में बदलाव आ गया है.

1995 से लेकर 2001 तक गोवा और बंगाल संतोष ट्रॉफी के फाइनल में भिड़ते रहे हैं, लेकिन यह पहली बार है जब गोवा ने बंगाल को हराया है. गोवा के फुटबॉल के लिए यह जीत कई तीखी हारों के बाद आई है, इसलिए इसका स्वाद और भी मीठा है. इसने भारतीय फुटबॉल के लिए भी एक नई राह खोल दी है, बंगाल और गोवा की तरह और राज्य भी अगर मुक़ाबले में आ सकें तो शायद भारतीय फुटबॉल को एक नई सांस मिल जाएगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रेम दीवानी फ्रीडा

स्लमडॉग के सितारों की ख़बरें हैं कि चली ही जा रही हैं. ख़त्म होने का नाम ही नहीं ले रहीं. पहले बाल कलाकार चर्चा में थे तो अब बड़ों की चर्चा है. पिछले दिनों मुंबई में बाल कलाकर रूबीना और अज़हर की झोपड़पट्टी तोड़े जाने पर हंगामा मचा था. जिस पर सहानुभूति दिखाने *स्लमडॉग* के निर्देशक डैनी बॉयल ख़ुद मुंबई पहुंच गए और दोनों को नए मकान भी दिलवा गए. फिर बाल कलाकार रूबीना की आत्मकथा की ख़बर आई. झोपड़पट्टी से लेकर स्टार बनने तक की यह कहानी रूबानी की ज़ुबानी होगी, जो शायद जुलाई में प्रकाशित हो. छोटे तो सुर्ख़ियां बटोर ही रहे थे कि अब उस फिल्म के हीरो-हीरोइन सुर्ख़ियों में आ गए हैं. कल तक देव पटेल से सिर्फ़ दोस्ती का दम भरने वाली फ्रीडा पिंटो ने आख़िरकार यह क़बूल कर ही लिया कि दोनों के बीच रिश्ता दोस्ती से बढ़ कर है. वह सचमुच देव पटेल की प्रेम दीवानी हैं. ग़ौरतलब है कि दोनों के बीच उम्र में पांच साल का अंतर है. फ्रीडा जहां 24 साल की हैं, वहीं देव पटेल 19 साल के ही हैं. फ्रीडा ने कहा है कि दोनों के बीच पहले दोस्ती ही हुई थी. लेकिन शूटिंग के दौरान जो कुछ-कुछ हो रहा था, वह पुरस्कार समारोहों के लिए आते-जाते बहुत कुछ में बदल गया. दोनों का मानना है कि यह रिश्ते की अनुभूति अलग ही है. ग़ौरतलब है कि दोनों हाल तक ऐसे किसी रिश्ते से इंकार करते थे, लेकिन फिल्म *मिराल* की शूटिंग के दौरान एक रेस्तरां में आलिंगनबद्ध पकड़े जाने के बाद कहने को कुछ बच नहीं गया. वैसे फ्रीडा की यह कोई पहली प्रेम कहानी नहीं है. पहला प्रेम उनका गोवा के एक लड़के के साथ था, जिससे शादी तक हो जाने की बात कही गई. यह दूसरी बात है कि उसके साथ शादी की बात से इंकार करते हुए फ्रीडा ने उससे अपने सारे रिश्ते भी तोड़ लिए.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

शाइनी आहूजा से बॉलीवुड शर्मसार

सोनिका अग्रवाल

प्रतिभा के लिहाज़ से नए आए अभिनेताओं में जिस शाइनी आहूजा को सबने सराहा, वह भारतीय सिनेमा का सबसे बड़ा कलंक साबित हुआ है. बॉलीवुड के इतिहास में शायद यह पहला मौका है, जब किसी अभिनेता पर बलात्कार का आरोप लगा है. मेडिकल जांच में इसकी पुष्टि ने किसी सफाई की गुंजाइश भी नहीं छोड़ी है. घरेलू नौकरानी के साथ बलात्कार के आरोप में शाइनी के ख़िलाफ़ सबूत इतने पक्के हैं कि पुलिस के सामने उसे अपना अपराध स्वीकारना ही पड़ा. शाइनी की इस शर्मनाक करतूत ने वैसे लोगों को सच ही साबित किया है कि जिनका हमेशा से मानना रहा है कि मुंबई की मायानगरी ऊपर से ही चमकदार है. बॉलीवुड में अपनी अजीबोग़रीब हरक़तों से बदनाम रहे अभिनेताओं की कभी कमी नहीं रही है, लेकिन किसी स्थापित अभिनेता के बलात्कार जैसे मामले में फंसने का यह पहला मौका है. ग़ौरतलब है कि कास्टिंग काउच में कभी शक्ति कपूर और अमन वर्मा तक बदनाम हो चुके हैं. अपनी हरक़तों के कारण सलमान और संजय दत्त भी कम कुख्यात नहीं हैं. लेकिन शाइनी ने घटियापन में सबको पीछे छोड़ दिया है.एक पल को यह मान लिया जा सकता है कि शाइनी ने नौकरानी का बलात्कार नहीं किया, बल्कि लड़की ने मर्ज़ी से संबंध बनाए. और बाद में बदनामी के डर से पुलिस में चली गई. लेकिन इससे भी अपराध की गंभीरता ख़त्म नहीं हो जाती. एक तो वह शादीशुदा हैं और उनकी एक बेटी भी है. दूसरे, मालिक और कर्मी का रिश्ता विश्वास का होता है. इसे तोड़ना कभी उचित नहीं माना जा सकता. तब तो और नहीं, जब वह लड़की हो और मालिक सार्वजनिक जीवन में पहचाना चेहरा हो. वैसे भी फिल्मी सितारे नौजवानों के आदर्श होते हैं. बच्चे उनकी हरक़तों की नक़ल करते हैं. शाइनी आहूजा का फिल्मी करियर *हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी* से शुरू हुआ था. उसकी अन्य प्रमुख फिल्मों में *खोया खोया चांद*, *गैंगस्टर* और *वो लम्हे* आदि हैं. उनकी पत्नी अनुपम आहूजा हैं, जो इन दिनों अमेरिका में रह रही हैं. बताया जाता है कि पति-पत्नी के संबंध भी इन दिनों ठीक नहीं चल रहे हैं. 14 जून की दोपहर में जिस समय यह घटना घटी, तो पत्नी घर में नहीं थी. शाइनी आहूजा की स्कूली शिक्षा रांची (झारखंड) स्थित सेंट जेवियर स्कूल से हुई. फिर आगे की पढ़ाई उसने दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलेज से की. वैसे तो शाइनी आहूजा ने लगभग दर्जन भर फिल्में की हैं, लेकिन सबसे अधिक काम उसने महेश भट्ट के साथ किया है. यही कारण है कि इस घटना से महेश भट्ट बेहद आहत हैं और उन्होंने इस जघन्य कांड के लिए उसकी भर्त्सना भी की है.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

गायत्री का गुणगान

गायत्री पटेल अपनी फिल्म-लेट्स डांस-के रिलीज होने से पहले ही ख़बरें में आने लगी हैं. अभी हाल में ही वह अपनी एक मित्र की शादी में भाग लेने गई थीं. वहां उनको नाचते देख कर अपने जमाने की मशहूर अभिनेत्री शर्मिला टैगोर ख़ुद को रोक नहीं पाईं. उन्होंने जब गायत्री के कंधे पर हाथ रखा तो वह सहसा यक़ीन ही नहीं कर सकी. तेज़ होती धड़कनों को क़ाबू में करते हुए बड़ी मुश्किल से वह इतना समझ पाईं कि शर्मिला जी उनके डांस की दिल खोल कर तारीफ़ कर रही थीं. गायत्री ख़ुशी से चहकते हुए बताती हैं कि शर्मिला जी ने कहा कि मैं वैजयंतीमाला, हेमा मालिनी और माधुरी दीक्षित की तरह नाचती हूं. ज़ाहिर सी बात है, जब राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता आरिफ़ शेख़ ने अपनी फिल्म-लेट्स डांस-में उन्हें लिया है, तो उनके अच्छे डांस को देख कर ही लिया होगा. फिल्म में गायत्री सुहानी की भूमिका निभा रही हैं, जो सड़क पर रहने वाले बच्चों को डांस सिखाती है. उनके दुख-दर्द में भागीदार बनती है. वह बहुत सफल होने के सपने देखती है और बच्चों को भी भागीदार बनाती है. वे सब गायत्री के साथ जीवन में कुछ करने दिखाने के लिए कठिन मार्ग पर चल पड़ते हैं और कामयाब होकर भी दिखाते हैं.

गायत्री मिस इंडिया-जॉर्जिया रह चुकने के अलावा मिस इंडिया-यूएसए प्रतियोगिता में दूसरे नंबर पर रह चुकी हैं. वह काफी तैयारी करके फिल्मों में आई हैं. अभिनय की बारीकियां जहां वीणा मेहता से सीखी है, वहीं हिंदी संवादों की अदायगी और उच्चारण पर सत्यदेव दुबे के साथ काम किया है. संवाद अदायगी के मामले में हिंदी और मराठी रंगमंच के दिग्गज कलाकार सत्यदेव दुबे एक अलग पहचान और सम्मान रखते हैं. हिंदी और संवाद अदायगी का सबसे अच्छा प्रशिक्षण वही देते हैं. यही कारण है कि उनके यहां नवोदित फिल्मी कलाकारों की लाइन लगी रहती है.

बहरहाल, गायत्री पटेल ने योग और कथक नृत्य की भी विधिवत ट्रेनिंग ली है. वह रोज़ाना इसका घंटों अभ्यास भी करती हैं. गायत्री ने बॉलीवुड में पहला क़दम एक म्युज़िक अल्बम के ज़रिए रखा था. वीनस के बैनर तले दो अल्बमों में वह काम कर चुकी हैं. एक में उनके साथ जुगल हंसराज थे, तो दूसरे में इंद्र कुमार थे. वह सैमसंग और फिल्मफेयर के लिए मॉडलिंग भी कर चुकी हैं. गायत्री जी, इतनी प्रतिभाशाली होने पर तो शर्मिला टैगोर ही नहीं, सभी आपको सराहेंगे.

मैं ससुराल नहीं जाऊंगी...

शिल्पा शेट्टी के प्रशंसक चाहें तो मिठाई बांट सकते हैं. इसलिए नहीं कि उनकी कोई फिल्म सुपर-डुपर हिट हो गई है. बल्कि इसलिए कि शादी के बाद वह लंदन नहीं जाएंगी. यानी उनके एनआरआई पति राज कुंद्रा ही लंदन छोड़कर मुंबई में बसेंगे. वैसे भी राज का बिज़नेस काफी कुछ दुबई में है और थोड़ा-बहुत यूक्रेन में, जो वह लंदन के बजाय मुंबई से भी कर सकते हैं. इसलिए उनके मुंबई शिफ़्ट करने से बिज़नेस को नुकसान पहुंचने की आशंका नहीं है. हालांकि सूत्र बताते हैं कि राज इसके लिए तैयार नहीं थे, लेकिन मुंबई न छोड़ने की जिद पर अड़ी शिल्पा की ख़ुशी के लिए वह आख़िरकार मान गए. लेकिन यह सब तो शादी के बाद की बात है. असल सवाल तो यह है कि दोनों शादी कब कर रहे हैं? तो यह हम बता देते हैं कि अगले साल. अभी सब कुछ फाइनल नहीं हुआ है, लेकिन संकेत यही हैं कि अगले साल फरवरी में दोनों सात फेरे ले लेंगे. हालांकि हाल तक यही कहा जा रहा था कि यह चिर प्रतीक्षित शादी इसी साल अक्टूबर में होगी. पर तभी शायद बिल्ली रास्ता काट गई. हालांकि शादी टलने के पीछे की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है. कहते हैं कि शिल्पा की मां ने किसी ज्योतिषी को जन्मकुंडली दिखाई थी. उस ज्योतिषी ने ही शादी इस साल नहीं करने की सलाह दी है. वैसे भी देखें तो यह साल शिल्पा के लिए कुछ ख़ास अच्छा नहीं रहा है. आईपीएल में उनकी टीम कोई ख़ास प्रदर्शन नहीं कर सकी, जबकि पिछले साल की वह चैंपियन टीम थी. यही देखकर शिल्पा और राज ने उसमें पैसा लगाया था. लेकिन पूछने पर शिल्पा शादी टलने का कारण कुछ और बताती हैं. उनके मुताबिक इस समय वह जुहू में बन रहे अपने घर को लेकर काफी व्यस्त हैं. ग़ौरतलब है कि शिल्पा और राज जुहू बीच के पास इन दिनों एक डुपलेक्स पेंटहाउस बनवा रहे हैं. इसके इंटीरियर्स का काम उन्होंने ऋतिक रोशन की पत्नी सुज़ैन ख़ान को दिया हुआ है. शिल्पा के मुताबिक शादी अगले साल करने से एक लाभ तो यह होगा कि घर तब तक तैयार हो जाएगा. दूसरे, तब तक तमाम लटके पड़े फिल्मी प्रोजेक्ट भी निपट जाएंगे. इसलिए कि शादी के बाद छह महीने तक वह कोई शूटिंग-वूटिंग नहीं करना चाहती हैं. बस और बस, वैवाहिक जीवन का लुत्फ़ उठाएंगी. शिल्पा जी, हमारी ओर से इसके लिए अभी से ढेर सारी शुभकामनाएं.

ऐसी दोस्ती देखी नहीं कभी

दो नायिकाओं में दोस्ती कम ही देखी जाती है. बॉलीवुड में अभिनेत्रियों को एक-दूसरे की कामयाबी और ड्रेस सेंस को लेकर झगड़ते अक्सर देखा जाता है. और अगर दोनों किसी फिल्म में एक साथ काम कर रही हों, फिर तो कहना ही क्या. एक-दूसरे के ख़िलाफ़ व्यंग्य के ऐसे-ऐसे तीर छोड़े जाने लगते हैं कि आसपास वाले दांतों तले उंगलियां दबाने लगते हैं. लेकिन रानी मुखर्जी और शर्लिन चोपड़ा इन दिनों उलटी गंगा बहा रही हैं. दोनों इन दिनों यशराज की नई फिल्म में एक साथ काम कर रही हैं. लेकिन सेट पर सेक्सी बम फटने के बदले दोस्ती की फुलझरियां जगमगाती रहती हैं. यूं तो रानी की किसी से भी झगड़ा कम ही होता है. अगर हो भी जाता है तो बात बाहर नहीं आ पाती. जैसे कभी प्रीति जिंटा से उनकी ख़ूब छनती थी. दोनों ने एक-दूसरे को सगी बहन से बढ़कर बताना शुरू कर दिया था. लेकिन अब उनमें दिखावे का ही हाय-हेलो रह गया है. बहरहाल, रानी अभी शर्लिन पर मेहरबान हैं. इतना कि अभिनय की बारीकियां भी सिखा रही हैं. रानी को तो शर्लिन इतनी पसंद आ गई हैं वह मौका मिलते ही कहीं भी उनकी तारीफ़ करने लगती हैं. बताया तो यहां तक जाता है कि सेट पर तब भी मौजूद रहती हैं, जब शर्लिन के शॉट चल रहे होते हैं. दोनों की दोस्ती देख लोग हैरान हैं. इसलिए कि एक अभिनय की महारानी है तो दूसरी सेक्सी बम. ख़ैर बॉलीवुड की कुछ हीरोइनों के सामने तो उन्होंने अच्छा उदाहरण पेश कर ही दिया है. ख़ास कर सोनम कपूर और ऐश्वर्या राय को तो इन दोनों से कुछ सीख ले ही लेनी चाहिए, जो आए दिन झगड़ती रहती हैं. इधर, एक बात और हो गई है. बॉलीवुड में इस बात को लेकर हैरान-परेशान हैं कि शर्लिन को यशराज की फिल्म-हड़िप्पा-कैसे मिल गई. इस फिल्म में शाहिद कपूर भी हैं. गौरतलब है कि शर्लिन की छवि एक अति बिंदास अभिनेत्री की रही है. यही कारण है कि कई वर्षों से मुंबई में रहने के बावजूद बड़े तो बड़े, छोटे बैनरों की फिल्में भी उन्हें कोई ख़ास नहीं मिली. आम तौर पर उनकी चर्चा फिल्मों के बजाय पार्टियों में उनके भड़कीले कपड़ों को लेकर होती है या फिर सेक्स को लेकर उनके विवादित बयानों से. लेकिन रानी की सोहबत में वह काफी गंभीर हो गई हैं. सच पूछें तो पिछले दिनों एक कंडोम का विज्ञापन न करने के पीछे भी असली कारण यही था. वरना कोई विज्ञापन शर्लिन चोपड़ा छोड़ दें, यह तो हो ही नहीं सकता.